मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 39 • वर्ष 4 • अंक 12 • फ़रवरी 2015 • पाँच रुपये • 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

ऐसे तैयार की जा रही है मज़दूर बस्तियों में साम्प्रदायिक तनाव की ज़मीन! 11

कुछ सीधी-सादी समाजवादी सच्चाइयाँ – पॉल लफ़ार्ग 13

केजरीवाल की राजनीति और भविष्य की सम्भावनाओं पर कुछ बातें 16

दिल्ली में 'आम आदमी पार्टी' की अभूतपूर्व विजय और मज़दूर आन्दोलन के लिए कुछ सबक़

सम्पादक मण्डल

कांग्रेस और भाजपा जैसे बड़े पूँजीपतियों के हितों की सेवा करने वाले चुनावी राजनीतिक दलों, तमाम छोटे-बड़े क्षेत्रीय पूँजीवादी दलों और संसदीय वामपन्थियों से ऊबी हुई दिल्ली की जनता ने पिछली बार अधूरी रह गयी अपने दिल की कसर को तबीयत से निकाला है। 'आप आदमी पार्टी' को हालिया विधानसभा चुनावों में 70 में 67 सीटों पर विजय मिली। 67 प्रतिशत मतदाताओं ने मतदान किया और उसमें से 54 प्रतिशत मत 'आप' को प्राप्त हुए। **'आप' को विशेष तौर पर ग़रीब मेहनतकश जनता और निम्न मध्यवर्ग के वोट प्राप्त हुए हैं।** मँझोले व उच्च मध्यवर्ग ने भी 'आप' को वोट दिया है, लेकिन उनके एक अच्छे-ख़ासे हिस्से ने भाजपा को भी वोट दिया है। इन चुनावों के नतीजों से कुछ बातें साफ़ हैं।

केजरीवाल की अगुवाई में 'आप' की ज़बर्दस्त जीत के निहितार्थ

पहली बात – कांग्रेस और भाजपा द्वारा खुले तौर पर अमीरपरस्त और पूँजीपरस्त नीतियों को लागू किये जाने के ख़िलाफ़ जनता का पुराना असन्तोष खुलकर निकला है। हाल ही में भाजपा सरकार द्वारा श्रम क़ानूनों को बेअसर करने की शुरुआत, भूमि अधिग्रहण क़ानून द्वारा किसानों की इच्छा के विपरीत ज़मीन अधिग्रहण का प्रावधान करना, रेलवे का भाड़ा बढ़ाया जाना, विश्व बाज़ार में पेट्रोलियम उत्पादों की क़ीमतों में भारी गिरावट के अनुसार पेट्रोल-डीज़ल की क़ीमतों में कमी न करना और महँगाई पर नियन्त्रण न लगा पाने के चलते मोदी सरकार विशेष तौर पर मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश जनता के बीच अलोकप्रिय होती जा रही है, हालाँकि इस अलोकप्रियता के देशव्यापी बनने में अभी कुछ समय है; कांग्रेस ने अपने कुल पाँच दशक के राज में जनता को ग़रीबी, महँगाई, अन्याय और भ्रष्टाचार के अलावा कुछ ख़ास नहीं दिया; जनता कहीं न कहीं कांग्रेस से ऊबी हुई भी थी; ऐसे में, जनता ने इन दोनों पार्टियों के विरुद्ध जमकर अपना गुस्सा और असन्तोष इन चुनावों में अभिव्यक्त किया है।

दूसरी बात – जनता के भीतर पहले भी लम्बे समय से यह गुस्सा और असन्तोष पनप रहा था, लेकिन पूँजीवादी चुनावी राजनीति के भीतर उसे कोई विकल्प नहीं दिख रहा था। पिछले तीन दशकों में सपा, बसपा, जद(यू), आदि जैसे तमाम दलों की भी कलई खुल चुकी है। ऐसे में, 'आम आदमी पार्टी' सदाचार, ईमानदारी और पारदर्शिता की बात करते हुए लोगों के बीच आयी। लोगों को उसने भ्रष्टाचार-मुक्त दिल्ली और देश का सपना दिखलाया। उसने जनता को बतलाया कि हर समस्या के मूल में भ्रष्टाचार है, चाहे वह शोषण हो, ग़रीबी हो या फिर बेरोज़गारी। उनके अनुसार देश की व्यवस्था में और पूँजीवाद में कोई बुराई नहीं है। बस दिक़्क़त यह है कि अगर सभी सरकारी नौकर ईमानदारी हो जायें, सभी पूँजीपति ईमानदारी से मुनाफ़ा कमायें तो सबकुछ सुधर जायेगा! केजरीवाल के अनुसार समस्या केवल नीयत है। फ़िलहाल जो लोग सत्ता में हैं, उनकी नीयत ख़राब है और 'आम आदमी पार्टी' अच्छी नीयत वाले लोगों की पार्टी है। अगर वह सत्ता में आ जाये तो भारत की और दिल्ली की सभी समस्याएँ दूर हो जायेंगी, लोग ख़ुशहाल हो जायेंगे, केजरीवाल के शब्दों में 'ग़रीब और अमीर दोनों दिल्ली पर राज करेंगे!' **अव्यवस्था, ग़रीबी, बेरोज़गारी और महँगाई से त्रस्त आम मेहनतकश जनता इस क़दर नाराज़ है, इस क़दर थकी हुई है, इस क़दर श्रान्त और क्लान्त है और विकल्पहीनता से इस क़दर परेशान है कि उसे केजरीवाल और 'आप' की लोकलुभावन बातें लुभा रही हैं। बल्कि कह सकते हैं कि जनता ने विकल्पहीनता और असन्तोष में अपने आप को लुभा लेने की इजाज़त केजरीवाल और 'आप' को दी है।** इसका एक कारण जनता के भीतर कांग्रेस और भाजपा की खुली अमीरपरस्ती के विरुद्ध वर्ग असन्तोष भी है। वह 'आम आदमी पार्टी' के दावों को लेकर इतनी आश्वस्त नहीं है, जितनी कि दो प्रमुख पूँजीवादी दलों से नाराज़ है। 'आम आदमी पार्टी' की ऊपर से ग़रीब के पक्ष में दिखनेवाली जुमलेबाज़ी ने काफ़ी हद तक आम ग़रीब जनता के गुस्से का कुशलता से इस्तेमाल किया है।

तीसरी बात – जनता के एक अच्छे-ख़ासे हिस्से में 'आम आदमी पार्टी' को लेकर एक विभ्रम भी बना हुआ है। इसका एक कारण यह भी है कि पिछली बार 'आप' को पूर्ण बहुमत नहीं मिला था, जिसका बहाना बनाकर उसे अपने असम्भव वायदों से भागने का अवसर मिल गया था। **सभी जानते हैं कि केजरीवाल के पिछली बार 49 दिनों के बाद भागने के पीछे जो असली वजह थी, वह जनलोकपाल बिल को लेकर हुआ विवाद नहीं था, बल्कि दिल्ली के 60 लाख ठेका मज़दूरों और कर्मचारियों को स्थायी करने के वायदे को पूरा करने का दबाव था। लेकिन अपनी ज़िन्दगी की जद्दोजहद में लगे मेहनतकश लोग जल्दी भूल भी जाते हैं और जल्दी माफ़ भी कर देते हैं।** ख़ासतौर पर तब जबकि कोई अन्य विकल्प मौजूद न हो! इसके अलावा, जनता

(पेज 8 पर जारी)

मनरेगा परियोजना में मोदी सरकार द्वारा की जा रही कटौतियाँ – कॉरपोरेट जगत की तिजोरियाँ भरने के लिए जनहित योजनाओं की बलि चढ़ाने की शुरुआत

निजीकरण-उदारीकरण के दौर में देश के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच असमानता में लगातार वृद्धि हुई है। ग्रामीण इलाक़ों में रोज़गार के अभाव में बड़ी संख्या बेरोज़गार है या अनियमित रोज़गार में लगी है। बढ़ती बेरोज़गारी के कारण मज़दूरों की बड़ी आबादी काम की तलाश में शहरों की ओर पलायन कर रही है। लेकिन पिछड़ी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और खुली मुनाफ़ाखोरी के बीच उद्योग-धन्धे जनता को रोज़गार देने में असमर्थ हैं। जिसके कारण मौजूदा यूपीए सरकार ने ग्रामीण इलाक़ों से मज़दूरों के इस पलायन को थामने के लिए साल 2005 में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारण्टी अधिनियम (मनरेगा) परियोजना का आरम्भ किया था। इस परियोजना के तहत ग्रामीण इलाक़े में ग़रीबी रेखा से नीचे जीने वाले हर व्यक्ति को 100 दिन काम देने की गारण्टी दी गयी, जिसका भुगतान काम समाप्त होने के 15 दिनों के भीतर करना तय किया गया है। फ़रवरी, 2006 में मनरेगा को देश के 200 पिछड़े ज़िलों में शुरू किया गया था और 1 अप्रैल, 2008 तक इसे देश के सभी ज़िलों में ज़मीनी स्तर पर लागू कर दिया गया था।

मोदी के नेतृत्व में सत्ता में आयी मौजूदा भाजपा सरकार मनरेगा को फिर से 200 ज़िलों तक सीमित करना चाहती है और इसके लिए सभी प्रदेशों को आवण्टित की जाने वाली धनराशि में कटौती करने का सिलसिला जारी है। यूपीए सरकार के समय से ही पिछले तीन-चार सालों में मनरेगा के लिए दिये जाने वाले बजट में कटौती की जा रही है, लेकिन भाजपा की सरकार बनने के बाद इस कटौती में और तेज़ी आ गयी है।

2014-15 में मनरेगा के लिए दिया जाने वाला फ़ण्ड 33,000 करोड़ रह गया है जबकि साल 2009-10 में 52,000 करोड़ रुपये का बजट निर्धारित किया गया था। इस परियोजना के तहत 2012 के अन्त तक 9 महीनों में 4.16 करोड़ घरों को रोज़गार मिला था जो 2013 में घटकर 3.81 करोड़ और 2014 में और घटकर 3.60 करोड़ घरों तक सीमित हो चुका है। सितम्बर 2014 तक के मनरेगा पर ख़र्च किये गये फ़ण्ड को 2013 के सितम्बर तक ख़र्च किये गये फ़ण्ड की तुलना में 10,000 करोड़ कम कर दिया गया है। लगातार जारी फ़ण्ड की कटौती से प्रति-परिवार दिया जाने वाले रोज़गार का औसत इस समय घटकर 34 दिन रह गया है जो 2009-10 में 54 दिन था। इसके साथ ही मनरेगा के तहत काम करने वाले मज़दूरों की बकाया मज़दूरी बढ़ती जा रही है और इस समय देश के 75 फ़ीसदी मनरेगा मज़दूरों की मज़दूरी बकाया है। कुछ राज्यों में फ़ण्ड की कमी और बढ़ती बकाया मज़दूरी के चलते रोज़गार देने का कार्यक्रम पूरी तरह से थम गया है।

वर्तमान भाजपा सरकार ने मनरेगा में सामान और उपकरण ख़रीदने के

पेज 11 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

एक आस्तिक की पुकार

हे भगवान,
तू ये क्या कर रहा है
इतने नास्तिकों को क्यों
पैदा कर रहा है
अब ये तेरी ही क़ब्र
खोदने में लग गये हैं

पार्वती के खसम
ये तेरी तीसरी आँख
और तेरे तांडव से भी
ख़ौफ़ नहीं खाते
कृष्ण के चक्र की बात करो
तो ये कृष्ण विवर के भेद बताते हैं
तेरे बाबाओं-स्वामियों की
ये पोल-पट्टियाँ खोल रहे हैं
तेरी भव्यता, विराटता,
असीमता की तो
ये चिन्दियाँ-चिन्दियाँ करके
उड़ा रहे हैं

पाप और पुण्य की बात करो
तो ये सबके कारनामे गिनाने लगते हैं
जन्म-जन्मान्तर के भेद खोलो
तो इस जन्म में ला पटकते हैं
और ख़ाली कनस्तर दिखाते हैं
न मानो
तो ख़ाली थैला पकड़ा देते हैं
हे ऊपरवाले तूने ये क्या कर दिया
इतने नास्तिकों को क्योंकर पैदा किया

एक नास्तिक एक बार
मुझसे भिड़ गया था
या कहो कि
मैंने ही उसे पकड़ लिया था
तो मैंने उसे नर्क दिखाया
स्वर्ग से ललचाया
इस जीवन को सुधारने का मंत्र दिया
तो नास्तिक बोला –
तेरा भगवान क्रान्ति कर
सकता है क्या?
और वो मुझे एक पर्चा थमा गया

हे ईश्वर तूने ये क्या किया –
एक-आध को पैदा कर लेता
चार-छः सौ से ही मन बहला लेता
लेकिन ये क्या बात हुई
तू हर जगह पैदा कर रहा है
दुनिया का कोई कोना नहीं छोड़ रहा
सब जगह नास्तिकों की भीड़ बढ़ती
जा रही है
अब तो ये 13 नंबर से भी नहीं डरते
बिल्ली के रास्ता काटने पर भी
नहीं रुकते
मन्दिर-मस्जिद-चर्च-गुरुद्वारे के आगे
सजदा भी नहीं करते
सच बताऊँ भगवान
इन्हें ऐसे करता देखकर
मेरा तो ख़ून बहुत खौलता है

लेकिन तू ये बता!
नास्तिकों के घर नास्तिकों को
पैदा करे
तब भी बात समझ में आती है
लेकिन तू तो
आस्तिकों के घर भी नास्तिक पैदा
कर रहा है
तिलकधारियों, जनेऊधारियों,
ख़तना-फ़तवाधारियों,
क्रॉस और डबल-क्रॉस धारियों
तू सबके घर नास्तिक पैदा कर रहा है
क्यों तू इन आस्तिकों के किये-धरे
पर
पानी फेर रहा है
तू चाहता क्या है
क्यों तू ऐसा कर रहा है

वैसे तू इतने नास्तिकों को
पैदा कहाँ से कर रहा है
किसी दूसरे ग्रह से
या किसी दूसरी आकाशगंगा से
इम्पोर्ट कर रहा है क्या
हमारी पृथ्वी की आबादी इतनी तो
नहीं थी
इतनी सारी आत्माएँ –
क्या तू क्लोनिंग से पैदा कर रहा है?
चलो तू जिससे भी पैदा कर रहा हो
लेकिन तू इतने नास्तिक पैदा क्यों कर
रहा है
अच्छा तू ये बता
क्या वास्तव में इनको
इन नास्तिकों को
जीने के लिए तेरी ज़रूरत नहीं
फिर ये जीते कैसे हैं?
ये जीते क्यों हैं?
तू इन्हें ज़िलाता क्यों है?

मेरे कष्टों को दूर कर भगवान
इन नास्तिकों को ख़त्म कर
नहीं तो जिस 'गति' से
तू इन्हें पैदा कर रहा है
ये तो धीरे-धीरे तुझे ही ख़त्म कर देंगे
अरे मेरी नहीं
अपनी तो सोच
क्यों तू इतने नास्तिकों को पैदा कर
रहा है
आख़िर क्यों, क्यों???

दिव्या,
हौज़री मज़दूर, लुधियाना

आओ गीत एक गाता हूँ
गीत एक सुनाता हूँ
आओ नौजवान साथियों
आओ मिलकर कहें इंकलाब साथियों
अशफ़ाक, बिस्मिल,
भगत का यह सन्देश
हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई
सबका यह देश
आओ मिलकर चलें हम सब
गले से गले
आओ मिलकर कहें इंकलाब साथियों
मात ये तेरे सुपुत्र हैं गुलाम
तेरी बहुएँ गुलाम, तेरी बहनें गुलाम
कितने जुल्मों को सहते रहे
और सहेंगे
आ बाजुओं के दम दिखाने चलें
आओ नौजवान साथियों
आओ मिलकर कहें
इंकलाब साथियों।

– रामआशीष
लक्ष्मी साइकिल रिम कारख़ाना,
बरगदवा, गोरखपुर

मज़दूर बिगुल यहाँ से प्राप्त करें :

दिल्ली : मज़दूर पाठशाला, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर (योगेश) 09289498250; वज़ीरपुर (सनी) 09873358124; शहीद भगतसिंह लाइब्रेरी, ए ब्लॉक, शाहबाद डेयरी, फ़ोन – 09971158783
गाज़ियाबाद-नोएडा : (तपीश) 9654077902
गुड़गाँव : (अजय) 09540436262, (राजकुमार) 09919146445
लुधियाना : मज़दूर पुस्तकालय, राजीव गाँधी कालोनी, फ़ोकल प्वाइण्ट थाने के पास, फ़ोन – 09646150249 ● चण्डीगढ़ : (मानव) 09888808188
लखनऊ : जनचेतना, डी-68, निराला नगर, फ़ोन – 0522-2786782, (सत्यम) 08853093555
गोरखपुर : जनचेतना, 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, फ़ोन – 08738863640
इलाहाबाद : (प्रसेन) 08115491369 ● पटना : (विशाल) 09576203525
खगड़िया (बिहार) : (नवीन) 7091862877
सिरसा : डॉ. सुखदेव हुन्दल की क्लिनिक, सन्तनगर, फ़ोन – 09813192365
मुम्बई : नारायण, रूम नं. 7, धनलक्ष्मी कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी, प्लाट नं. बी-6, सेक्टर 12, खारघर, नवी मुम्बई, फ़ोन – 09619039793

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।
यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी- चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,
बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीआर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।
मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण: Mazdoor Bigul
खाता संख्या: 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ
सदस्यता: (वार्षिक) 70 रुपये (डाकख़र्च सहित);
(आजीवन) 2000 रुपये
मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:
फ़ोन: 0522-2786782, 8853093555, 9936650658,
ईमेल: bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक: www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigul@rediffmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता - 2000/-

गौरव इण्टरनेशनल के मज़दूर साथी के साथ बेरहम मारपीट का कड़ा विरोध

कब तक यूँ ही गुलामों की तरह सिर झुकाये जीते रहोगे?

बीते 10 फ़रवरी को उद्योग विहार फ़ेज़ 1 में गौरव इंटरनेशनल, प्लॉट संख्या 236 में एक मज़दूर समीचन्द यादव की मैनेजमेण्ट व गार्ड द्वारा निर्मम पिटाई की गयी। समीचन्द और उसकी पत्नी दोनों इसी कारख़ाने में काम करते हैं। समीचन्द की तबीयत पिछले तीन-चार दिनों से ख़राब थी। इस वजह से वह काम पर दस मिनट लेट पहुँचा। बस इतनी-सी देरी के लिए गार्ड से उसकी कहा-सुनी हो गयी और गार्ड ने उसे थप्पड़ मार दिया। जब समीचन्द ने इसका विरोध किया तो मैनेजमेण्ट की शह पर कई गार्डों ने उसकी जानलेवा पिटाई की। उसे नाज़ुक हालत में अस्पताल में भर्ती कराया गया। जब उसकी पत्नी इलाज के लिए पैसे माँगने गयी तो उसे पन्द्रह हज़ार में मामला रफ़ा-दफ़ा करने को कहा गया। इसके बाद 12 फ़रवरी को ख़बर आयी कि समीचन्द की मौत हो गयी, हालाँकि यह सच नहीं था। रोज़-रोज़ की बेइज़्ज़ती और बदसलूकी से त्रस्त मज़दूर अपने साथी की मौत की ख़बर से अपना आपा खो बैठे। उनके गुस्से का लावा फूट पड़ा। परिणामस्वरूप फ़ैक्टरी में तोड़-फोड़ हुई, सड़कों पर वाहन फूँके गये और गौरव-ऋचा ग्रुप के दूसरे कारख़ाने के मज़दूर भी अपने साथी के साथ हुई मारपीट के विरोध में सड़कों पर उतर आये। इसके बाद पूरे इलाक़े को पुलिस की छावनी में तब्दील कर दिया गया। अगले दिन अख़बारों के पन्नों पर ख़बरें इस तरह छपीं जैसे सारा कसूर मज़दूरों का ही हो। लेकिन सोचने की बात है कि इन अख़बारों में तब कोई ख़बर नहीं छपती जब हर दिन कारख़ानों में मज़दूरों के साथ मारपीट की घटना घटती है, और न ही तब कोई पुलिस कार्रवाई होती है जब यह कारख़ानेदार सारे श्रम क़ानूनों को ताक पर रखकर हमारा ख़ून-पसीना चूसते हैं। जब सुपरवाइज़र-ठेकेदार-मैनेजर गाली-गलौच करते हैं, तब कहीं कोई ख़बर नहीं बनती और न ही इसकी शिकायत किसी थाने में ही लिखी जाती है।

साथियो, समीचन्द के साथ हुई यह मारपीट अपने आपमें कोई अकेली घटना नहीं है। यह पूरे इलाक़े में मज़दूरों पर हो रहे अत्याचार की झलक मात्र है। गुड़गाँव-मानेसर-धारुहेड़ा-बावल से लेकर भिवाड़ी और खुशखेड़ा तक लाखों मज़दूर आधुनिक गुलामों की तरह खट रहे हैं। इस पूरे आद्योगिक क्षेत्र में ऑटोमोबाइल, दवा आदि फ़ैक्टरियों के साथ-साथ कपड़े उद्योग से जुड़े अनेक कारख़ाने मौजूद हैं। इन फ़ैक्टोरियों में लाखों मज़दूर रात-दिन अपना हाड़-मांस गला कर पूरी दुनिया की बड़ी-बड़ी कम्पनियों के लिए सस्ती मज़दूरी में माल का उत्पादन करने के लिए लगातार खटते हैं। जहाँ एक तरफ़ ये कम्पनियाँ हमारे ही हाथों से बने उत्पादों को देश-विदेश में बेचकर अरबों का मुनाफ़ा कमा रही हैं, वहीं दूसरी तरफ़ इनमें काम करने वाले हम मज़दूर बेहद कम मज़दूरी पर 12 से 16 घंटों तक काम करने के बावजूद अपने परिवार के लिए ज़रूरी सुविधाएँ भी जुटा पाने में असमर्थ हैं। लगभग हर कारख़ाने में अमानवीय वर्कलोड, जबरन ओवरटाइम, वेतन में कटौती, ठेकेदारी, यूनियन बनाने का अधिकार छीने जाने जैसे साझा मुद्दे हैं। लेकिन हमारा संघर्ष कभी-कभी के गुस्से के विस्फोट तक और अलग अलग कारख़ानों में अलग-अलग लड़ाइयों तक ही सीमित रह जाता है। किसी एक दिन हमारे गुस्से का लावा फूटता है लेकिन फिर चीज़ें वापस उसी ढर्रे पर चलने लगती हैं। फिर कहीं कोई समीचन्द पिटता है और प्रबन्धन की गुण्डागर्दी का शिकार होता है। और दमन-उत्पीड़न का यह सिलसिला बदस्तूर जारी है। बल्कि यूँ कहें तो ऐसी घटनाओं के बाद पूँजीपतियों के टुकड़े पर पलने वाले मीडिया और मालिकों के दलालों को हमें बदनाम करने का मौक़ा मिल जाता है।

तो फिर करें क्या?

ऐसे में सवाल उठता है कि हमें करना क्या चाहिए? चाहे गौरव इण्टरनेशनल की हालिया घटना हो या फिर इसके पहले मानेसर में मारुति या भिवाड़ी में श्रीराम पिस्टन की घटना हो, मज़दूरों का गुस्सा दमन के ख़िलाफ़ जहाँ-तहाँ फूटता रहा है। लेकिन दिशाहीन गुस्से और असन्तोष के इस फ़ौरी विस्फोट के बाद क्या हमारे जीवन में कोई बदलाव आया है? क्या हमारी फ़ैक्ट्रियों के हालात में कोई सुधार हुआ है? क्या हमारी जीवन-स्थितियाँ बदली हैं? नहीं! शोषण और उत्पीड़न के ख़िलाफ़ गुस्सा और नफ़रत जायेज़ है और इसे मज़दूरों से ज़्यादा बेहतर तरीक़े से कौन जानता है? लेकिन साथियो, गुस्से और हिंसा की ऐसी कार्रवाइयाँ अपनी भड़ास निकालने जैसी हैं। यह हमारे संघर्ष का रास्ता नहीं हो सकता। तो फिर रास्ता क्या है? साथियो, रास्ता सिर्फ़ एक है। और वह है अपनी फ़ौलादी एकजुटता क़ायम करना और अपनी क्रान्तिकारी यूनियन के निर्माण में जुट जाना। साथियो, हमें समझना होगा कि आज पूँजी की ताक़तें सरकार-पुलिस-प्रशासन-मीडिया एक साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर खड़ी हैं। उनके द्वारा पाली-पोसी गयी दलाल ट्रेड यूनियनें और अन्य संगठन हमें भरमाने और हमारी एकजुटता को तोड़ने का काम बख़ूबी कर रहे हैं। साथियो, ऐसे में दो बात याद रखने की ज़रूरत है। पहला यह कि हमें मज़दूर आन्दोलन में घुसे हुए दलालों, मौक़ापरस्त ताक़तों और ग़द्दार ट्रेड यूनियनों से सावधन रहना होगा और इनके चक्कर में नहीं पड़ना होगा। और दूसरा यह कि मज़दूरों के पास अपनी फ़ौलादी एकता के अलावा कोई ताक़त नहीं है और इस ताक़त से बड़ी दूसरी कोई ताक़त नहीं है। हम अपनी यह ताक़त इलाक़ाई और सेक्टरगत एकता कायम कर स्थापित कर सकते हैं।

आज हमें एक ओर सेक्टरगत यूनियन जैसेकि समस्त टेक्सटाइल मज़दूरों की एक यूनियन, समस्त ऑटोमोबाइल मज़दूरों की एक यूनियन, आदि बनानी होंगी जोकि समूचे मज़दूरों को एक साझे माँगपत्रक पर संगठित करे। वहीं हमें समूचे गुड़गाँव-मानेसर इलाक़े के मज़दूरों की एक इलाक़ाई मज़दूर यूनियन भी बनानी होगी, जोकि इस इलाक़े में रहने वाले सभी मज़दूरों की एकता कायम करती हो, चाहे वे किसी भी सेक्टर में काम करते हों। ऐसी यूनियन कारख़ानों के संघर्षों में सहायता करने के अलावा, रिहायश की जगह पर मज़दूरों के नागरिक अधिकारों जैसेकि शिक्षा, पेयजल, चिकित्सा आदि के मुद्दों पर भी संघर्ष करेगी। जब तक सेक्टरगत और इलाक़ाई आधार पर मज़दूरों के ऐसे व्यापक और विशाल संगठन नहीं तैयार होंगे, तब तक उस नग्न तानाशाही का मुक़ाबला नहीं किया जा सकता जोकि हरियाणा के मज़दूरों के ऊपर थोप दी गयी है।

दिल्ली में 'चुनाव भण्डाफोड़ अभियान' : चुनाव में जीते कोई भी हारेगी जनता ही!

दिल्ली विधानसभा के चुनाव के अवसर पर चुनावी नौटंकी का पर्दाफ़ाश करते हुए बिगुल मज़दूर दस्ता, नौजवान भारत सभा, दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन, करावल नगर मज़दूर यूनियन और दिशा छात्र संगठन ने दिल्ली के विभिन्न इलाक़ों में 'चुनाव भण्डाफोड़' अभियान चलाया। करावल नगर, खजूरी, मुस्तफ़ाबाद, वजीरपुर औद्योगिक क्षेत्र, पीरागढ़ी, शाहाबाद डेयरी, बवाना, नरेला आदि के मज़दूर क्षेत्रों में तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग और रोहिणी में विशेष तौर पर चलाये गये 'चुनाव भण्डाफोड़ अभियान' के तहत बड़े पैमाने पर पर्चे बाँटे गये और नुक्कड़ सभाएँ की गयीं। लोगों से चुनावी नौटंकी के भ्रमजाल से बाहर आने और भगतसिंह के विचारों के मार्गदर्शन में पूँजीवादी संसदीय ढाँचे का क्रान्तिकारी विकल्प खड़ा करने का आह्वान किया गया। आज़ादी के 67 साल बीत जाने के बाद यह तो साफ हो चुका है कि गैरबराबरी और अन्याय पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था में चुनाव एक धोखा है जिसमें हर बार बस पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी बदल जाती है। पूँजीवादी व्यवस्था में जनतंत्र जनता के लिए धनतंत्र, लाठीतंत्र और गुण्डातंत्र के अलावा कुछ नहीं है। हमारे पास यही विकल्प होता है कि हम साँपनाथ-नागनाथ और बिच्छूप्रसाद में से किसी एक को चुन लें। आज ज़रूरत है इस बात को समझने की कि इस या उस चुनावी पार्टी से उम्मीद लगाने की बजाय मज़दूर वर्ग को अपनी क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करनी होगी और मनुष्य द्वारा मनुष्य के लूट पर टिकी इस व्यवस्था को उखाड़कर जनता का अपना राज कायम करने की लड़ाई लड़नी होगी।

कई दशक से जारी इस अश्लील नाटक के पूरे रंगमंच को ही उखाड़ फेंकने का वक़्त आ गया है। इस देश के मेहनतकशों और नौजवानों के पास वह क्रान्तिकारी शक्ति है जो इस काम को अंजाम दे सकती है। बेशक यह राह कुछ लम्बी होगी, लेकिन पूँजीवादी नक़ली जनतन्त्र की जगह मेहनतकश जनता को अपना क्रान्तिकारी विकल्प पेश करना होगा। उन्हें पूँजीवादी जनतन्त्र का विकल्प खड़ा करने के एक लम्बे इंक़लाबी सफ़र पर चलना होगा। यह सफ़र लम्बा तो ज़रूर होगा लेकिन हमें भूलना नहीं चाहिए कि एक हज़ार मील लम्बे सफ़र की शुरुआत भी एक छोटे से क़दम से ही तो होती है!

कैसा है लोकतन्त्र, कैसा है संविधान पूँजी की चक्की में पिस रहा मज़दूर-किसान!

26 जनवरी को बरगदवा औद्योगिक क्षेत्र, गोरखपुर में सभा

गणतन्त्र दिवस पर कार्यक्रम की शुरुआत 'तोड़ो बन्धन तोड़ो' गीत से की गयी। नौजवान भारत सभा के प्रसेन ने कहा कि गणतन्त्र दिवस पर होने वाले भव्य जलसे में भारत के सबसे बड़े लिखित संविधान होने का दम भरा जाता है, सैन्य शक्ति का प्रदर्शन भी किया जाता है। इस बार अमेरिका के राष्ट्रपति ओबामा को आमन्त्रित किया गया है। मगर ओबामा भारत में बनारसी पान और गुजराती कढ़ी खाने नहीं, बल्कि अमेरिकी पूँजीपतियों के लिए लूट के नये रास्ते खोलने के मकसद से आये हैं। दिल्ली के मज़दूरों-ग़रीबों की भारी आबादी की झुग्गी-झोपड़ियों को उजाड़ कर लुटेरों के लिए गलीचे बिछाये गये। तब बताइये कैसा है यह लोकतन्त्र?

सुई से लेकर जहाज़ तक सब इस देश के मज़दूर-किसान पैदा करते हैं। फ़ैक्ट्रियों से लेकर खेतों-खदानों में दो जून की रोटी के लिए पूरी ज़िन्दगी खपाते हैं, फिर भी उन्हें जीने लायक बेहतर चीज़ें नहीं मिल पाती हैं। सरकारें भी इस चीज़ को मानती हैं कि देश में 84 करोड़ लोग 20 रुपये पर या उससे कम पर गुज़र बसर करते हैं। 18 करोड़ लोग फ़ुटपाथों पर और 18 करोड़ लोग झुग्गियों में रहते हैं। 34 करोड़ लोग प्रायः भूखे सोते हैं। दूसरी ओर मुकेश अम्बानी जैसे लोग 1 मिनट में 40 लाख रुपये कमाते हैं। देश की 80 प्रतिशत सम्पदा पर मुट्ठी भर पूँजीपतियों का क़ब्ज़ा है। संविधान के तहत होने वाला चुनाव बस इसलिए होता है कि जनता तय करे उन्हें पाच सालों तक किससे लुटना है। 2014-2015 के बजट में पूँजीपतियों को 5.32 लाख करोड़ रुपये की छूट दी गयी। बीमा से लेकर रक्षा क्षेत्र में 49 से लेकर 100 प्रतिशत तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति देने की तैयारी है। आज ज़रूरी है कि मज़दूर वर्ग यह जाने

कि राजकाज समाज का पूरा ढाँचा काम कैसे करता है और किस प्रकार इस लुटेरे तन्त्र का ध्वंस होगा और मेहनतकशों का राज कैसे बनेगा। भगतसिंह और उनके जैसे हज़ारों नौजवानों की कुर्बानियाँ हमें ललकार रही हैं कि हम उनके सपनों को पूरा करने में जुट जाये।

बिगुल मज़दूर दस्ता के राजू ने कहा कि इस समय देश भर में लवजिहाद, घरवापसी, मन्दिर-मस्जिद का मुद्दा नेताओं धर्मध्वजाधारियों द्वारा उठाया जा रहा है तककि आम लोग जो अपने हक-अधिकार से वंचित किये जा रहे हैं वे इकट्ठा ना हो सकें। मज़दूर साथियों को भगतसिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाक उल्ला खाँ की बातों पर ज़रूर ध्यान देना होगा। क्रन्तिकारियों ने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर और उससे भी बढ़कर वर्गीय एकता पर ज़ोर दिया था। इसके बाद स्वदेशी-स्वदेशी का राग भरने वालों की चारसौबीसी का पर्दाफ़ाश करने वाला गीत 'जय श्रीराम-जय श्री राम' पेश किया गया।

बिगुल मज़दूर दस्ता के एक और साथी अंगद ने ट्रेडयूनियन के मसले पर अपनी बात रखते हुए कहा कि उच्च न्यायालय ने भी माना है कि श्रम न्यायालयों से एवं समूची न्यायपालिका से श्रमिकों को न्याय नहीं मिल पाता। देश के 93 प्रतिशत कामगार असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं। संविधान में लिखित काम के घण्टे, न्यूनतम मज़दूरी, छुट्टी, मेडिकल आदि सुविधाएँ केवल काग़ज़ों पर हैं, कहीं लागू नहीं होतीं। पूँजीपति श्रम क़ानूनों को अपना जेबी माल बना चुके हैं। इसलिए ज़रूरी है कि पेशा आधारित व इलाक़ा आधारित क्रान्तिकारी ट्रेडयूनियन बनायी जाये। पुरानी धन्धेबाज हो चुकी परम्परागत ट्रेडयूनियन का पीछा छोड़ा जाये। उनकी स्थिति एकदम साफ़ हो चुकी है कि वे पूँजीपतियों और मज़दूरों के बीच के दल्ले बन चुके हैं। अंगद ने मज़दूर अख़बार के अध्ययन और अख़बार के लिए रिपोर्ट लिखने पर भी ज़ोर दिया।

टेक्सटाइल वर्कर्स यूनियन के अजय मिश्रा ने मज़दूरों के बीच की कमियों कमज़ोरियों पर चर्चा की कि अभी मज़दूर ख़ुद पहल नहीं ले रहे हैं। दूसरों के भरोसे बैठे रहते हैं। यह ठीक नहीं है। यूनियन के कामों में सभी साथी बढ़चढ़कर भाग लें। फ़ैक्ट्रियों के सभी खातों में प्रतिनिधि चुनें जाये ताकि आपसी संवाद व ज़िम्मेदारियों का सही बँटवारा हो। हम एकजुट होकर ही मालिकों से लड़ सकते हैं। इंजीनियरिंग वर्कर्स यूनियन के रामआशीष ने स्वरचित गीत 'इंक़लाब-ज़िन्दाबाद' सुनाया और विस्तार से फ़ैक्टरी मालिकों की चालों, भितरघातियों की करतूतों के बारे में बताया और मज़दूर साथियों से नयी शुरुआत की अपील की। इसी क्रम में अन्य मज़दूर साथियों चन्द्रभूषण व रमेश ने भी बात रखी। स्त्री मुक्ति लीग की निशू ने कहा कि मज़दूर साथी अपने आयोजनों व अपने संघर्षों से अपनें घरों की महिलाओं को दूर रखते हैं, यह बहुत बड़ी कमजोरी है। महिलाएँ आधी आबादी होती हैं, इन्हें साथ लेकर ही हम कोई भी संघर्ष लड़ व जीत सकते हैं, इनके बिना नहीं। असली संघर्ष मज़दूर वर्ग के हर तरह के शोषण, उत्पीड़न से पूर्णमुक्ति का है महिलाएँ इससे अलग नहीं रह सकती हैं। कार्यक्रम में संसद में चलनें वाली नौटंकी का पर्दाफ़ाश करने वाला नाटक देख फ़कीरे लोकतन्त्र का फूहड़ नंगा नाच उर्फ़ हवाई गोले खेला गया। क्रान्तिकारी साहित्य की प्रदर्शनी भी लगायी गयी थी। अन्त में क़दम मिलाओ साथियों चलेंगे साथ-साथ हम गीत गाया गया। इंक़लाब ज़िन्दाबाद! कैसा है लोकतन्त्र, कैसा है संविधान पूँजी की चक्की में पिस रहा मज़दूर-किसान! जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो! आदि ज़ोरदार नारों के साथ सभा का समापन किया गया।

– बिगुल संवाददाता

फ़तेहाबाद, हरियाणा के मनरेगा मज़दूर संघर्ष की राह पर

हरियाणा के ज़िला फ़तेहाबाद के मनरेगा मज़दूरों ने 6 फरवरी को विभिन्न जन-संगठनों के साझा मोर्चे के समर्थन से बड़ी जुटान की और जुलूस तथा डी.सी. कार्यालय पर धरने का आयोजन किया।

हरियाणा की भाजपा सरकार ने ग्रामीण मज़दूरों को 'महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारण्टी योजना' के तहत काम देना बन्द कर दिया है। केन्द्र सरकार ने भी अपने अन्तरिम बजट में मनरेगा के तहत दी जाने वाली राशि में भारी कटौती की है। आने वाले समय में इसमें और कटौती की जानी है। मनरेगा के तहत होना तो यह चाहिए था कि रोज़गार गारण्टी को साल में 100 दिन से और ज़्यादा बढ़ाया जाता किन्तु केन्द्र सरकार ने इसे 34 दिन करने का प्रस्ताव रखा है। पहले भी मनरेगा के तहत होने वाले घोटाले आये दिन अख़बारों की सुर्ख़ियाँ बनते थे और मज़दूरों को अपनी मेहनत का फल लेने के लिए ही चक्कर लगाने पड़ते थे। इस योजना के तहत ख़र्च होने वाली धनराशि का बड़ा हिस्सा दलालों और बिचौलियों के पेट में चला जाता था लेकिन इस सबके बावजूद ग्रामीण मज़दूरों के लिए रोज़गार की गारण्टी थोड़ी राहत तो देती ही थी। इस योजना को भी सरकारों ने ख़ैरात में नहीं दे दिया था बल्कि लम्बे संघर्षों के बाद ही यह हासिल हुई थी। आज केन्द्र के साथ-साथ भाजपा की राज्य सरकारें भी मज़दूर विरोधी क़दम उठा रही हैं। एक तरफ़ तो श्रमेव जयते की नौटंकी होती है तो दूसरी तरफ़ मज़दूरों के रहे-सहे अधिकारों को भी छीना जा रहा है। ऐसे में मज़दूरों के पास अपने अधिकारों को लेकर सड़कों पर उतरने के सिवाय कोई चारा नहीं रह गया है। हरियाणा के ग्रामीण मज़दूरों में भाजपा की राज्य सरकार के ख़िलाफ़ भारी असन्तोष है। बड़ी संख्या में मनरेगा मज़दूरों ने उक्त विरोध प्रदर्शन में भागीदारी की और अपनी माँगों को लेकर एस.डी.एम. को ज्ञापन सौंपा। हरियाणा ग्रामीण मज़दूर मोर्चा, शहीद भगतसिंह नौजवान सभा, नौजवान भारत सभा, देहाती मज़दूर संगठन आदि जनसंगठनों ने इस आयोजन में शिरकत की। हरियाणा की ग्रामीण मज़दूर आबादी को किस तरह से गोलबन्द किया जाये, यह रिपोर्ट लिखे जाने तक इस बात पर आगे की योजना बन ही रही थी।

– बिगुल संवाददाता

साम्प्रदायिक फासीवाद के विरोध में कई राज्यों में जुझारू जनएकजुटता अभियान

देश में साम्प्रदायिक फासीवाद के उभार के ख़िलाफ़ दिल्ली, लखनऊ, हरियाणा और मुम्बई सहित देश के कई इलाक़ों में नौजवान भारत सभा, स्त्री मुक्ति लीग, दिशा छात्र संगठन, बिगुल मज़दूर दस्ता, जागरूक नागरिक मंच तथा अन्य सहयोगी संस्थाओं की ओर से साम्प्रदायिक फासीवाद विरोधी जनएकजुटता अभियान चलाया जा रहा है। इस अभियान के तहत व्यापक पैमाने पर पर्चा वितरण, नुक्कड़ सभाएँ, पोस्टरिंग और सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये गये। कार्यकर्ताओं ने विभिन्न सभाओं में कहा कि देश में नरेन्द्र मोदी की सरकार आने के बाद गाँव-शहरों में साम्प्रदायिक ज़हर फैलाया जा रहा है। जैसे-जैसे मोदी सरकार की चुनावी वायदों की पोल खुलती जा रही है, जनता को धर्म के नाम पर बाँटने की कोशिशें की जा रही हैं। एक तरफ़ महँगाई, बेरोज़गारी और भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा है और दूसरी ओर जनता इस पर सवाल नहीं उठा सके इसलिए भगवा गिरोहों द्वारा लव जिहाद, 'घर वापसी' और 'हिन्दू राष्ट्र' जैसे नारे उछाले जा रहे हैं। ऐसे में आज ज़रूरी है जनता की वर्गीय एकजुटता कायम कर सभी धार्मिक कट्टरपन्थियों के ख़िलाफ़ संघर्ष चलाया जाये। एक बार फिर शहीदे-आज़म भगतसिंह का सन्देश गाँव-गाँव, घर-घर तक ले जाना होगा कि हमें जाति-धर्म की दीवारें तोड़कर शिक्षा, रोज़गार, चिकित्सा जैसे बुनियादी मुद्दों के लिए जनता की फौलादी एकजुटता कायम करनी होगी।

दिल्ली में बिगुल मज़दूर दस्ता, नौजवान भारत सभा, दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन, करावल नगर मज़दूर यूनियन और दिशा छात्र संगठन ने करावल नगर, खजूरी, मुस्तफ़ाबाद, त्रिलोकपुरी, वजीरपुर औद्योगिक क्षेत्र और पीरागढ़ी में 'जुझारू जनएकजुटता अभियान' चलाया। इस अभियान के तहत लोगों के बीच पर्चे बाँटे गये और नुक्कड़ सभाओं का आयोजन किया गया एवं लोगों से फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ जुझारू एकजुटता कायम करने का आह्वान किया गया।

वक्ताओं ने कहा कि जिस समय देश में जनता बढ़ती क़ीमतों, बेकारी और बदहाली से तंगहाल हो, अचानक उसी समय 'लव जिहाद', 'घर वापसी' और 'हिन्दू राष्ट्र निर्माण' का लुकमा क्यों उछाला जाता है? जब चुनाव नज़दीक हों तभी अचानक दंगे क्यों होने लगते हैं? जब जनता महँगाई और भ्रष्टाचार की मार से बदहाल होती है उसी समय साम्प्रदायिक तनाव क्यों भड़क जाता है? क्या दंगों में कभी तोगड़िया, ओवैसी, सिंघल या योगी आदित्यनाथ जैसे लोग मारे जाते हैं? दंगों में हमेशा आम लोग मारे जाते हैं, बेघर और यतीम होते हैं!

आज जब देशभर में साम्प्रदायिक उन्माद फैलाकर जनता को बाँटने और अपनी चुनावी रोटियाँ सेंकने की राजनीति की जा रही है, तब इस तरह की ताक़तों के खिलाफ़ सिर्फ़ साम्प्रदायिक सद्भाव और धर्मनिरपेक्षता से मजबूत लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। इतिहास इस बात का गवाह है कि ऐसी तमाम ताक़तों को मेहनतकश जनता की जुझारू एकजुटता ने ही मुँहतोड़ जवाब दिये हैं। आज के समय में भी ज़रूरी है कि गली-मुहल्लों, नुक्कड़-बस्तियों में ऐसी ताक़तों के खिलाफ़ एकजुट हुआ जाये।

नौजवान भारत सभा की उत्तर-पश्चिम दिल्ली इकाई ने साम्प्रदायिक फासीवाद विरोधी इंकलाबी जनएकजुटता अभियान के तहत बवाना, जे .जे कॉलोनी, शाहपुर गढ़ी, नरेला औद्योगिक क्षेत्र, शाहबाद डेयरी के पंच मंदिर की झुग्गियों, मेट्रो विहार आदि क्षेत्रों में सघन प्रचार अभियान चलाया। इस दौरान जगह-जगह नुक्कड़ सभाएँ करके पर्चे बाँटे गये। पूरे इलाक़े में साम्प्रदायिक फासीवाद के ख़िलाफ़ पोस्टर लगाये गये। कार्यकर्ताओं ने मज़दूरों और अन्य आम नागरिकों को बताया कि हमें फिरकापरस्त ताक़तों के जाल में फँसने से बचना होगा। हमें जाति-धर्म में बाँटने वालों की साज़िशों को नाकाम करने के लिए वर्ग के आधार पर एकजुटता कायम करनी होगी तभी हम असली मुद्दों के ख़िलाफ़ एक सही और जुझारू लड़ाई लड़ सकेंगे।

लखनऊ में नौजवान भारत सभा, स्त्री मुक्ति लीग और जागरूक नागरिक मंच की ओर से खदरा के विभिन्न इलाक़ों और निशातगंज में 'साम्प्रदायिक फासीवाद विरोधी जनएकजुटता अभियान' चलाया गया। खदरा इलाक़े की गलियों में जगह-जगह नुक्कड़ सभाएँ करते हुए बड़े पैमाने पर पर्चे बाँटे गये, क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किए गये और लोगों से बातचीत की गयी। खदरा इलाक़े के रामलीला मैदान, पक्का पकरिया, छोटी पकरिया, साठ फुटा रोड आदि में नुक्कड़ सभाओं में कार्यकर्ताओं ने कहा कि हमें हर प्रकार के धार्मिक कट्टरपन्थियों को सिरे से नकारना होगा और उनके ख़िलाफ़ लड़ना होगा! हमें प्रण कर लेना चाहिए कि हम अपने गली-मुहल्लों में किसी भी धार्मिक कट्टरपन्थी को साम्प्रदायिक उन्माद भड़काने की इजाज़त नहीं देंगे और उन्हें खदेड़ भगायेंगे! हमें यह माँग करनी चाहिए कि केन्द्र सरकार और तमाम राज्य सरकारें धर्म को राजनीति और सामाजिक जीवन से अलग करने के लिए सख़्त क़ानून बनायें! धर्म देश के सभी नागरिकों का व्यक्तिगत मसला होना चाहिए और किसी भी पार्टी, दल, संगठन या नेता को धर्म या धार्मिक सम्प्रदाय के नाम पर राजनीति करने, बयानबाज़ी करने और उन्माद भड़काने पर सख़्त से सख़्त सजा दी जानी चाहिए और उन पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए। हमें ऐसी व्यवस्था कायम करने के लिए लड़ने का संकल्प लेना चाहिए जिसकी कल्पना भगतसिंह और उनके इंकलाबी साथियों ने की थी : एक ऐसी व्यवस्था जिसमें उत्पादन, राज-काज और समाज के ढाँचे पर उत्पादन करने वाले वर्गों का हक़ हो और फ़ैसला लेने की ताक़त उनके हाथों में हो! जिसमें जाति और धर्म के बँटवारे न हों! जिसमें आदमी के हाथों आदमी की लूट असम्भव हो! जिसमें सारी पैदावार समाज के लोगों की ज़रूरत के लिए हो न कि मुट्ठीभर लुटेरों के मुनाफ़े के लिए! केवल ऐसी ही व्यवस्था धार्मिक उन्माद, साम्प्रदायिकता, दंगों और कायरतापूर्ण आतंकी हमलों से भी मुक्ति दिला सकती है! अगर हम अभी इसी वक़्त इस बात को नहीं समझते तो आने वाले समय में देश खण्ड-खण्ड में टूट जायेगा और दंगों और जातिवाद की आग में धू-धू जलेगा! सभी जगह आम लोगों ने धार्मिक-मजहबी बँटवारे की राजनीति का पर्दाफ़ाश करने की बात से सहमति जतायी और कई जगह लोगों ने ऐसी राजनीति के ख़िलाफ़ संगठित कार्रवाई करने के लिए मुहल्ला स्तर पर बैठकें करने की बात कही। इस अभियान के तहत लखनऊ शहर के अलग-अलग इलाक़ों में नुक्कड़ सभाएँ, जनसभाएँ, नुक्कड़ नाटक, प्रभात फेरियाँ, कविता पाठ, विचार गोष्ठियाँ, पोस्टर प्रदर्शनी, फ़िल्म शो आदि के जरिये साम्प्रदायिक बँटवारे की राजनीति का भण्डाफोड़ किया जायेगा और जनता के वास्तविक मुद्दों पर एकजुट और संगठित होकर संघर्ष करने के लिए लोगों का आह्वान किया जायेगा।

नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ताओं ने हरियाणा के ज़िला कैथल के कलायत में साम्प्रदायिक फासीवाद के ख़िलाफ़ जुझारू जनएकजुटता अभियान चलाया। धर्म के आधार पर लोगों को बाँटकर अपनी चुनावी रोटियाँ सेंकने वालों और देश को दंगों की आग में झोंकने की कोशिश में लगे संघी गिरोह का भंडाफोड़ करते हुए इस अभियान के तहत नुक्कड़ सभाओं का आयोजन किया गया व व्यापक पर्चा वितरण किया गया। सभा ने नरवाना शहर और बेलरखाँ गाँव में भी साम्प्रदायिक फासीवाद के ख़िलाफ़ जुझारू जनएकजुटता अभियान चलाया। कई जगह नुक्कड़ सभाएँ तथा आईटीआई और केएम कॉलेज में परचा वितरण किया गया। विभिन्न जगह पर आयोजित नुक्कड़ सभाओं में वक्ताओं का कहना था कि पूरे देश की तरह हरियाणा में भी बीजेपी सरकार आने के बाद लगातार गाँव-शहरों में साम्प्रदायिक ज़हर फैलाया जा रहा है। जब केन्द्र में मोदी सरकार के सारे दावों की पोल खुल रही है तब भगवा गिरोहों द्वारा 'घर वापसी' 'लव जिहाद' और 'हिन्दू राष्ट्र' के नारे उछाले जा रहे हैं ताकि जनता बढ़ती महँगाई, बेरोज़गारी और भ्रष्टाचार पर सवाल न उठा सके।

मुम्बई में साम्प्रदायिक फासीवादियों द्वारा मेहनतकशों के बीच फूट डालने की साजिशों के विरुद्ध नौजवान भारत सभा, यूनीवर्सिटी कम्युनिटी फ़ॉर डेमोक्रेसी एण्ड इक्वैलिटी व बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओं ने जुझारू जनएकजुटता अभियान के तहत व्यापक पर्चा वितरण किया। मानखुर्द, मानखुर्द की झुग्गी बस्ती और लोकल ट्रेनों में साम्प्रदायिकता विरोधी जनएकजुटता अभियान के तहत सघन पर्चा वितरण व सभाएँ की गयीं। वक्ताओं ने कहा कि भगतसिंह का यह सन्देश आज घर-घर पहुँचाने की ज़रूरत है कि **"लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी गरीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुक़सान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी ज़ंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।"**

कोल इण्डिया लिमिटेड में विनिवेश

देश की सम्पदा को औने-पौने दामों में देशी-विदेशी पूँजीपतियों के हवाले करने की दिशा में एक बड़ा क़दम

पिछली 6 जनवरी को पाँच केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों - एचएमएस, बीएमएस, इंटक, एटक, सीटू - ने देशभर के कोयला खान मज़दूरों की पाँच दिवसीय हड़ताल का ऐलान किया था। इस हड़ताल की मुख्य वजह मोदी सरकार द्वारा कोयला खनन के क्षेत्र में देश के सबसे बड़े सार्वजनिक उपक्रम कोल इण्डिया लिमिटेड के निजीकरण और विराष्ट्रीकरण का विरोध बतायी गयी थी। मज़दूर बिगुल के पिछले अंक में हम देख चुके हैं कि किस तरीक़े से ग़द्दार केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों ने शर्मनाक तरीक़े से घुटने टेककर पाँच दिवसीय हड़ताल को दूसरे दिन ही वापस ले लिया था। जनवरी माह के अन्त में सरकार ने इन ग़द्दारों को ठेंगा दिखाते हुए कोल इण्डिया लिमिटेड में विनिवेश की अपनी पुरानी योजना पर अमल करते हुए उसके 10 प्रतिशत शेयर बेच दिये जिसके बाद अब कोल इण्डिया लिमिटेड में सरकार की हिस्सेदारी 80 प्रतिशत ही रह गयी है।

कोल इण्डिया लिमिटेड दुनिया का पाँचवाँ सबसे बड़ा कोयला उत्पादक है जिसमें लगभग 3.5 लाख खान मज़दूर काम करते हैं। मोदी सरकार द्वारा कोल इण्डिया लिमिटेड के शेयरों को औने-पौने दामों में बेचे जाने का सीधा असर इन खान मज़दूरों की ज़िन्दगी पर पड़ेगा। पिछले कई वर्षों से भाड़े के कलमघसीट पूँजीवादी मीडिया में बिजली के संकट और कोल इण्डिया लिमिटेड की अदक्षता का रोना रोते आये हैं। इस संकट पर छाती पीटने के बाद समाधान के रूप में वे कोल इण्डिया लिमिटेड को जल्द से जल्द निजी हाथों में सौंपने का सुझाव देते हैं ताकि उसमें मज़दूरों की संख्या में कटौती की जा सके और बचे मज़दूरों के सभी अधिकारों को छीनकर उन पर नंगे रूप में पूँजीपतियों की तानाशाही लाद दी जाये। कोल इण्डिया लिमिटेड का हालिया विनिवेश इसी रणनीति की दिशा में आगे बढ़ा हुआ क़दम है। वैसे देखा जाये तो कोल इण्डिया लिमिटेड के निजीकरण की प्रक्रिया तो हालिया विनिवेश से बहुत पहले ही शुरू हो चुकी थी। ग़ौरतलब है कि कोल इण्डिया लिमिटेड की सहयोगी कम्पनियों, मसलन महानदी कोलफ़ील्ड्स और नार्दन्स कोल फ़ील्ड्स, में पिछले कई सालों से कोयला खनन का अधिकांश काम ठेके पर कराया जाता है जिसके ज़रिये कोयला खनन में लगी ठेका कम्पनियाँ अकूत मुनाफ़ा कूटती आयी हैं और कोयला खान मज़दूरों की हालत बद से बदतर होती गयी है। मोदी सरकार ने निजीकरण की दिशा में आगे के डग भरे हैं। पिछले साल पारित कोयला खान (विशेष प्रावधान) अध्यादेश इसी रास्ते की ओर बढ़ा क़दम है जिसके ज़रिये निजी पूँजी को देश के विशाल कोयला भण्डार का दोहन करने की खुली छूट दे दी गयी है। ग़द्दार केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों ने जनवरी में पाँच दिवसीय हड़ताल को दूसरे दिन वापस लेने के पीछे कारण बताया था कि कोयला मन्त्री पीयूष गोयल ने उन्हें आश्वासन दिया है कि कोल इण्डिया का निजीकरण नहीं किया जायेगा। इस आश्वासन को इन ग़द्दारों ने मज़दूरों की जीत कहकर प्रचारित किया था। सरकार ने इन बेशर्म ग़द्दारों को पट्टी पढ़ाई कि विनिवेश निजीकरण नहीं है और अब ये ग़द्दार यही पट्टी मज़दूरों को पढ़ा रहे हैं। ये मज़दूरों से यह बात छिपा जाते हैं कि चूँकि एक साथ पूरा का पूरा उपक्रम निजी हाथों को सौंपने से जनअसन्तोष फैलने की सम्भावना ज़्यादा रहती है इसलिए नव-उदारीकरण के पिछले ढाई दशकों में सरकारों को विनिवेश के ज़रिये किश्तों में निजीकरण करना आसान लगता है।

कोल इण्डिया लिमिटेड के हालिया विनिवेश के ज़रिये सरकार ने 24,557 करोड़ रुपये हासिल किये जिसको पूँजीवादी मीडिया ने सरकार की बड़ी सफलता के रूप में प्रचारित किया। ग़ौरतलब है कि राजग सरकार ने चालू वित्तीय वर्ष में सार्वजनिक उपक्रमों के विनिवेश के ज़रिये कुल 43,425 करोड़ रुपये इकट्ठा करने का लक्ष्य रखा था। कोल इण्डिया लिमिटेड में विनिवेश के पहले तक सरकार मात्र 1,719 करोड़ रुपये ही इकट्ठा कर पायी थी जिसको लेकर पूँजीपतियों के टुकड़खोर अर्थशास्त्री और बुद्धिजीवी सरकार की आलोचना कर रहे थे। कोल इण्डिया लिमिटेड में विनिवेश के ज़रिये मोदी सरकार ने उन्हें पूँजीपतियों के वारे-न्यारे करने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता ज़ाहिर कर दी है और इस बात के स्पष्ट संकेत दे दिये हैं कि वह थैलीशाहों के "अच्छे दिन" लाने के प्राणपण से काम कर रही है।

विनिवेश के पीछे सरकार और पूँजीपतियों के कलमघसीट यह तर्क देते हैं कि इसके बिना राजकोषीय घाटा (फ़िस्कल डेफ़िसिट) कम नहीं किया जा सकता है। लेकिन इस तरह का कुतर्क गढ़ने वाले कभी भी यह नहीं बताते कि राजकोषीय घाटा बढ़ने की सबसे बड़ी वजह सरकार द्वारा हर साल पूँजीपतियों-व्यापारियों को करों में लाखों करोड़ रुपये की छूट और उनके द्वारा करों की गयी चोरी है। यानी एक ओर सरकारें पूँजीपतियों-व्यापारियों को तोहफ़े के रूप में करों में रियायतें देती हैं और इन रियायतों से भी सन्तुष्ट न होने पर उनके द्वारा करों में की गयी चोरी की वजह से सरकार को जब पर्याप्त राजस्व नहीं मिल पाता तो राजकोषीय घाटा बढ़ने का रोना रोकर वह जनता की बुनियादी ज़रूरतों जैसे भोजन, शिक्षा, आवास, स्वास्थ्य में से कटौती करती है और जब उससे भी पूँजीपतियों की हवस नहीं शान्त होती तो जनता की हाड़-तोड़ मेहनत से खड़े किये गये सरकारी उपक्रमों को औने-पौने दामों पर देशी-विदेशी पूँजीपतियों को बेचकर राजकोषीय घाटा कम करने की कवायदें की जाती हैं।

इस पूरी प्रक्रिया से यह दिन के उजाले की तरह साफ़ हो जाता है कि सरकार चाहे किसी भी पार्टी की बने, वह पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी का ही काम करती है। हम मज़दूरों को इस पूँजीवादी लोकतंत्र के ऊपरी दिखावे पर सीना फुलाने की बजाय इसकी मूल अन्तर्वस्तु को समझना चाहिए कि यह कुल मिलाकर पूँजीपति वर्ग की मज़दूर वर्ग के ऊपर तानाशाही है। जब तक हम इस सच्चाई को गाँठ बाँधकर नहीं रख लेते तब तक हम मज़दूर वर्ग की मुक्ति के रास्ते पर आगे नहीं बढ़ पायेंगे।

– आनन्द

उत्तर-पूर्व की उत्पीड़ित राष्ट्रीयताएँ और दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता

भारत के उत्तर-पूर्व में स्थित आठ राज्यों - मणिपुर, असम, मिज़ोरम, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, मेघालय, त्रिपुरा और नागालैण्ड - से आने वाले लाखों प्रवासियों के साथ शेष भारत का बेगाने और दुश्मनाना व्यवहार को सिर्फ़ नस्लीय भेद कहना मामले को बेहद हल्का बनाना है। हाल में उत्तर-पूर्व के लोगों के विरुद्ध होने वाली हिंसक वारदातों और भेदभावपूर्ण कार्रवाइयों में काफ़ी बढ़ोत्तरी हुई है। अरुणाचल के एक छात्र नीडो की दिल्ली में हुई हत्या के बाद सरकार ने एक 11 सदस्यीय समिति का गठन किया था। हाल ही में इस कमेटी ने एक लम्बी रिपोर्ट पेश की है। कमेटी की रिपोर्ट के मुताबिक़ वर्ष 2005 से 2013 के बीच 2 लाख उत्तर-पूर्व वासी शिक्षा और रोज़गार की तलाश में दिल्ली पहुँचे। आने वाले इन लोगों में से 86 प्रतिशत का कहना था कि उनके साथ भेदभाव किया जाता है और उन्हें नीचा समझा जाता है। उत्तर-पूर्व की दो-तिहाई महिलाओं ने रोज़मर्रा के जीवन में उनके साथ होने वाली छेड़खानी और यौन-उत्पीड़न की वारदातों की ताईद की।

अक्सर शेष भारत के लोग उत्तर-पूर्व से आने वाले भारतीयों को चिंकी, मोमो, चीनी, नेपाली आदि नामों से पुकारते हैं। कमेटी की रिपोर्ट से यह भी पता चलता है कि मध्यम और छोटे दर्ज़े की प्राइवेट कम्पनियों में उत्तर-पूर्वी लोगों को आसानी से काम मिल जाता है। वे मेहनती हैं और उन्हें अंग्रेज़ी बोलने में कोई दिक्क़त नहीं आती। इससे स्थानीय लोग चिढ़ते हैं, उन्हें लगता है कि बाहरी राज्य के लोग उनके रोज़गार के अवसरों को छीन रहे हैं। यहाँ यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि प्राइवेट कम्पनियों द्वारा उत्तर-पूर्वी लोगों को तरज़ीह देने का एक कारण यह भी है कि छोटी कम्पनियों के मालिक अक्सर ही काम निकल जाने के बाद बिना तनख़्वाह दिये उनको नौकरी से निकाल देते हैं। पहले से ही सामाजिक-सांस्कृतिक अलगाव में जी रहे ये लोग इस हालत में भी नहीं होते कि इस अन्याय और शोषण का संगठित विरोध कर सकें।

हमारे देश के भीतर विभिन्न राष्ट्रीयताएँ और उप-राष्ट्रीयताएँ समय-समय पर आपस में टकराती रहती हैं। इसका ख़ामियाज़ा सबसे अधिक महिलाओं और मेहनतकशों की आबादी को भुगतना पड़ता है। जैसेकि महाराष्ट्र में यूपी-बिहार वालों के ख़िलाफ़ नफ़रत की राजनीति या फिर यूपी में बिहार वासियों के विरुद्ध माहौल, उत्तर भारत और दक्षिण भारत का द्वन्द्व इन झगड़ों के कुछेक उदाहरण हैं। इन समस्याओं की जड़ भारत के ब्रिटिश औपनिवेशिक इतिहास में है। लेकिन हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि आज़ादी के बाद हुए असमान पूँजीवादी विकास और दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता की दमनकारी भूमिका ने हालात काफ़ी बिगाड़ दिये हैं। उत्तर-पूर्व के विशिष्ट इतिहास और नृजातीय विभिन्नताओं की वजह से वहाँ की राष्ट्रीयताओं और उपराष्ट्रीयताओं की समस्या कहीं ज़्यादा जटिल है। इस जटिलता को समझने के लिए हमें इन राज्यों के इतिहास पर एक नज़र डालनी होगी।

मणिपुर में औपनिवेशिक काल में ही हिजाम इराबोट के करिश्माई नेतृत्व में सामन्तवाद और उपनिवेशवाद के ख़िलाफ़ एक शक्तिशाली जनवादी आन्दोलन उभरा जिसकी वजह से अंग्रेज़ों के जाने के बाद 'मणिपुर संविधान क़ानून 1947' पास हुआ जिसके परिणामस्वरूप मणिपुर राज्य आधुनिक ढंग-ढर्रे पर एक संवैधानिक राजतन्त्र के रूप में सामने आया। नये संविधान के तहत मणिपुर में चुनाव भी हुए और विधानसभा भी गठित हुई। परन्तु 1947 में ही भारत सरकार के प्रतिनिधि वी.पी. मेनन ने राज्य में गिरती क़ानून-व्यवस्था पर विचार-विमर्श के लिए राजा को शिलांग बुलाया और वहाँ कुटिलता से उससे भारत में विलय के समझौते पर हस्ताक्षर करा लिया। भारत सरकार ने इतनी भी जहमत उठाना ज़रूरी नहीं समझा कि इस समझौते की अभिपुष्टि नवनिर्वाचित मणिपुर विधानसभा द्वारा करा ली जाये। उल्टे विधानसभा को भंग कर दिया गया और मणिपुर को चीफ़ कमिश्नर के मातहत कर दिया गया और प्रलोभन और दमन की नीति अपनाकर प्रतिरोध को दबाने का सिलसिला शुरू हो गया और इसी के समान्तर सशस्त्र संघर्षों का भी सिलसिला शुरू हो गया।

नगा राष्ट्रवाद का इतिहास इससे भी पुराना है। बीसवीं सदी की शुरुआत में भारत-बर्मा सीमा पर स्थित नगा पहाड़ियों के निवासी नगा नेशनल कौंसिल (एन.एन.सी.) के बैनर तले एकजुट होकर एक साझा मातृभूमि और स्वशासन की आकांक्षा प्रकट करने लगे थे। गाँधी ने एकाधिक बार नगा लोगों के आत्मनिर्णय के अधिकार दिलाने का वायदा भी किया था। ब्रिटिश प्रशासन और एन.एन.सी. के बीच हैदरी समझौते के तहत नगालैण्ड को दस वर्षों के लिए संरक्षित दर्जा प्रदान किया गया था और उसके बाद नगाओं को तय करना था कि वे संघ में शामिल हों अथवा नहीं। लेकिन अंग्रेज़ों के जाने के बाद भारतीय राज्य ने एकतरफ़ा तरीक़े से नगा भूभाग को भारतीय गणराज्य का हिस्सा घोषित कर दिया।

मिज़ो सशस्त्र विद्रोह की कहानी साठ के दशक से शुरू होती है। साठ के दशक के प्रारम्भ में असम की लुशाई पहाड़ियों में भीषण अकाल पड़ा। एक स्थानीय राहत टीम बनी जिसने भारत सरकार से राहत की गुहार लगायी, पर भारत सरकार ने राहत की रस्म-अदायगी से अधिक कुछ भी नहीं किया। इसके बाद राहत टीम ने स्वयं को मिज़ो नेशनल फ़्रण्ट (एम.एन.एफ़.) के रूप में संगठित किया और 'भारतीय उपनिवेशवाद से मिज़ोरम की मुक्ति' के लिए सशस्त्र संघर्ष का आह्वान किया। फ़रवरी 1966 में सशस्त्र दस्तों ने ऐजल शहर क़ब्ज़ा कर लिया। शहर को फिर से क़ब्ज़ा करने में भारतीय सेना ने पहली बार अपनी नागरिक आबादी पर धुआँधार बमबारी की। हज़ारों परिवारों को उनके घरों से निकालकर सड़कों के किनारे नये गाँव बसाये गये ताकि सेना उन्हें आसानी से नियन्त्रित कर सके। इससे काफ़ी हद तक मिज़ो समाज की संरचना तबाह हो गयी। 1986 में एम.एन.एफ़. और भारत सरकार के बीच समझौता हुआ जिसके बाद एम.एन.एफ़. हिंसा छोड़कर भारतीय संविधान के अन्तर्गत काम करने पर राज़ी हो गया। पर इससे मिज़ोरम के नृजातीय समूहों का अलगाव ज़रा भी कम नहीं हुआ। आज भी वहाँ अलग-अलग नृजातीय समूहों के अपने-अपने सशस्त्र विद्रोही दस्ते हैं।

सिक्किम का दर्जा 1947 से भारत के संरक्षित राज्य (प्रोटेक्टोरेट) का था। वह भारतीय संघ का हिस्सा नहीं था। 1975 में बिना सिक्किम की जनता की राय लिये भारतीय संविधान में मौजूद प्रावधान के तहत उसे भारत में मिला लिया गया और पूर्ण राज्य का दर्जा दे दिया गया। इसके बाद सिक्किम भी उत्तर-पूर्व का हिस्सा माना जाने लगा।

केन्द्रीय सत्ता के विरुद्ध उपजे जनअसन्तोष को बन्दूक़ की नोंक पर दबाने के मक़सद से 1959 से ही पूरे उत्तर-पूर्व में आर्म्ड फ़ोर्सेज़ स्पेशल पावर्स एक्ट (आफ़्स्पा) लागू है। यह दमनकारी काला क़ानून सेना और अर्द्धसैनिक बलों को उत्तर-पूर्व की जनता के ऊपर मनमाना व्यवहार करने की पूरी छूट देता है। अंग्रेज़ों की ही तरह दिल्ली की सरकार की उत्तर-पूर्व के इलाक़े में बुनियादी दिलचस्पी भूराजनीतिक-रणनीतिक ही है। इसीलिए इन समस्याओं का राजनीतिक समाधान ढूँढ़ने की बजाय दमन का जमकर इस्तेमाल किया गया। इसके अलावा इन राज्यों में विकसित हो रहे नये मध्यम वर्ग को प्रलोभन और दबाव के सहारे सरकारी पिट्ठू बनाने की रणनीति भी अपनायी गयी। उत्तर-पूर्व के पूरे इलाक़े की शेष भारत

(पेज 7 पर जारी)

महाराष्ट्र में मज़दूरों के हितों पर बड़ा हमला
श्रम क़ानूनों में "सुधार" के बहाने रहे-सहे अधिकार छीनने की तैयारी

राजस्थान और मध्यप्रदेश की भाजपा सरकारों के नक्शे-क़दम पर चलते हुए अब महाराष्ट्र सरकार ने भी श्रम क़ानूनों में सुधार का बहाना बनाकर मज़दूरों के अधिकारों पर बड़ा हमला बोल दिया है। 'मेक इन इण्डिया' की नरेन्द्र मोदी की नीति की तर्ज़ पर ही महाराष्ट्र के मुख्यमन्त्री देवेन्द्र फड़नवीस ने 'मेक इन महाराष्ट्र' को अपना आदर्श वाक्य बनाया है व इसके लिए पूँजीपतियों को पर्यावरण सम्बन्धी छूटें देने, सस्ती या मुफ़्त ज़मीन देने, करों में छूट देने व मज़दूर हितों की सुरक्षा करने वाले श्रम क़ानून ख़त्म कर देने की ओर क़दम बढ़ा दिया है।

महाराष्ट्र के श्रम विभाग ने तीन क़ानूनों – कारख़ाना क़ानून 1948, औद्योगिक विवाद क़ानून 1947 और ठेका क़ानून 1971 में वही संशोधन प्रस्तावित किये हैं जो राजस्थान की भाजपा सरकार ने केन्द्र में नरेन्द्र मोदी की सरकार बनते ही लागू किये हैं। चूँकि केन्द्र सरकार भी इन क़ानूनों में कोई अड़चन पैदा नहीं करने वाली, इसलिए ये संशोधन बिना किसी कठिनाई के क़ानून बन जायेंगे। मोदी सरकार ने आते ही योजना आयोग को ख़त्म करके जो 'नीति आयोग' बनाया है, उसका पहला उपाध्यक्ष जिस अरविन्द पनगढ़िया को बनाया गया है वह ही राजस्थान सरकार के श्रम "सुधारों" का सूत्रधार है और बचे-खुचे श्रम क़ानूनों को पूरी तरह मालिकों के हक़ में बदल डालने के पक्के पैरोकार हैं। आने वाले दिनों में देश के हर भाजपा शासित राज्य में ऐसे ही क़ानून बनाये जाने हैं। हरियाणा के मुख्यमन्त्री खट्टर ने तो ऐसा इरादा ज़ाहिर भी कर दिया है। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि कांग्रेसी सरकारें भी पूँजीपतियों की सेवा में किसी से पीछे नहीं रहने वालीं। इसलिए, देशभर में इसी तरह के श्रम क़ानून लागू हो जायेंगे। सारी बड़ी ट्रेड यूनियनें हमेशा की तरह इस मसले पर बस बयानबाज़ी और एकाध अनुष्ठानिक विरोध प्रदर्शन करके अपना कर्तव्य पूरा कर चुकी हैं। मज़दूर वर्ग के इन ग़द्दारों से इससे ज़्यादा की उम्मीद पालना भी बेवक़ूफ़ बनना ही है। ऐसे में व्यापक मज़दूर आबादी को पहले से भी ज़्यादा कठिन हालात में काम करने और बुनियादी अधिकारों के लिए भी क़दम-क़दम पर जूझने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।

अपने मुनाफ़े को बढ़ाने के लिए हर पूँजीपति यह चाहता है कि उसे मज़दूरों को काम से निकालने, फ़ैक्टरी बन्द करने आदि की बेरोकटोक छूट मिले। इसी को ध्यान में रखते हुए महाराष्ट्र सरकार ने औद्योगिक विवाद क़ानून 1947 के उस प्रावधान को बदलने की तैयारी कर ली है जिसमें किसी भी ऐसी फ़ैक्टरी, जिसमें 100 से ज़्यादा मज़दूर काम करते हों, को बन्द करने या मज़दूरों को काम से निकालने के लिए सरकार की अनुमति की ज़रूरत पड़ती थी। अब इस सीमा को बढ़ाकर 300 मज़दूर तक किया जा रहा है। ग़ौरतलब है कि पूरे महाराष्ट्र में लगभग 41000 औद्योगिक इकाइयाँ हैं जिसमें से 39000 में 300 से कम मज़दूर काम करते हैं यानी इस क़ानून के लागू होने पर यहाँ के 95 फ़ीसदी मालिकों को छँटनी करने की छूट मिल जायेगी। बेशर्मी की इन्तेहा यह है कि ऐसे क़दमों को सरकार और मीडिया से लेकर बड़े-बड़े धन्नासेठ जायेज़ ठहरा रहे हैं (आख़िर उनके फ़ायदे का जो है!)। इण्डियन मर्चेण्ट्स चैम्बर के अध्यक्ष प्रबोध ठक्कर ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा "बाबा आदम के ज़माने के श्रम क़ानूनों की वजह से उत्पादन दर बुरी तरह प्रभावित होती है। उद्योगपति उन देशों में निवेश करना पसन्द करते हैं, जहाँ के श्रम क़ानून लचीले हों। बिना नौकरी के श्रम सुरक्षा का भी क्या मतलब है?"

इसी तरह श्रम विभाग ने फ़ैक्टरी एक्ट 1948 में भी संशोधन प्रस्तावित किया है। फ़ैक्टरी एक्ट के लागू होने की शर्त के रूप में अब मज़दूरों की संख्या को दोगुना कर दिया गया है। अब फ़ैक्टरी एक्ट 20 या इससे ज़्यादा मज़दूरों (जहाँ बिजली का इस्तेमाल होता हो) तथा 40 या इससे ज़्यादा मज़दूरों (जहाँ बिजली का इस्तेमाल न होता हो) वाली फ़ैक्टरियों पर ही लागू होगा। इस तरह सीधे-सीधे बड़ी संख्या में छोटे फ़ैक्टरी मालिकों को फ़ैक्टरी एक्ट से बाहर कर दिया गया है। वैश्विक असेम्बली लाइन के इस दौर में ज़्यादातर मालिक अलग-अलग जगहों पर (जहाँ जो चीज़ सस्ती मिले व श्रम सस्ता मिले के फ़ार्मूले के हिसाब से) अपने उत्पादों का एक-एक हिस्सा बनवाते हैं और बाद में किसी एक जगह उसे असेम्बल किया (जोड़ा) जाता है। इससे न सिर्फ़ फ़ैक्टरी का आकार छोटा हो जाता है बल्कि मज़दूरों की संगठित ताक़त के विरोध से भी बचने में मदद मिलती है। साथ ही बहुत सारा काम लोगों से घरों में या फिर छोटी-छोटी वर्कशॉपों में करवा लिया जाता है। फ़ैक्टरी एक्ट में ऊपर बताये गये संशोधनों से देश में बड़ी तादाद में मौजूद छोटी फ़ैक्टरियों के मालिकों को मज़दूरों को लूटने की खुली छूट मिल जायेगी।

ठेका एक्ट, 1970 भी अब 20 या इससे ज़्यादा मज़दूरों वाली फ़ैक्टरी पर लागू होने की जगह 50 या इससे ज़्यादा मज़दूरों वाली फ़ैक्टरी पर लागू होगा। ग़ौरतलब है कि आज देश की मज़दूर आबादी का लगभग 92 फ़ीसदी हिस्सा असंगठित है जिसके लिए पहले से ही बहुत कम श्रम क़ानून हैं और जो हैं वे भी लागू नहीं होते हैं। ठेका, दिहाड़ी, पीसरेट आदि हथकण्डों से मज़दूरों को बुरी तरह लूटा जाता है। उनसे मनमानी शर्तों पर काम कराया जाता है और मालिक की मर्ज़ी पर कभी भी उन्हें बिना कुछ दिये काम से निकाल बाहर किया जा सकता है। ऐसे में और ज़्यादा मज़दूरों को क़ानूनी रूप से अरक्षित करने में इस संशोधन की बड़ी भूमिका रहेगी और राज्य के ठेका मज़दूरों की लूट को बढ़ाने के लिए देश के धन्नासेठ देवेन्द्र फड़नवीस की भाजपा सरकार के आभारी रहेंगे।

मई 2014 में देशभर की जनता के बीच 'अच्छे दिनों' का शिगूफ़ा उछालकर सत्ता में आयी भाजपा ने गद्दी सँभालते ही अपना असली रंग दिखाना शुरू कर दिया था। केन्द्र में नरेन्द्र मोदी नीत भाजपा सरकार नित ऐसी नीतियाँ लागू कर रही है जो देशभर की मेहनतकश जनता के बुरे दिन लेकर आयेंगी और उन्हीं के पद-चिह्नों पर चलते हुए देवेन्द्र फड़नवीस भी महाराष्ट्र की मेहनतकश जनता के हितों को ताक पर रख अमीरज़ादों के अच्छे दिन लाने में जुटे हुए हैं। मज़दूरों को इन "अच्छे दिनों" का असली अर्थ अब अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

– सत्यनारायण

राजस्थान में पंचायती राज चुनाव में बदलाव से जनता को क्या मिला!

अभी हाल ही में जनवरी माह में राजस्थान में पंचायती राज्य व्यवस्था के चुनाव सम्पन्न हुए हैं। राजस्थान में पंचायती राज की त्रिस्तरीय व्यवस्था है। सबसे उपरी स्तर पर ज़िला परिषद (ज़िला स्तर पर), पंचायत समिति (ब्लॉक स्तर पर), पंचायत (ग्राम स्तर पर)। यह पंचायती राज्य व्यवस्था भारतीय संविधान के द्वारा सभी राज्यों में लागू की गयी है। राजस्थान में प्रथम पंचायत चुनाव 1960 में हुए थे। उसी के अन्तर्गत राजस्थान में 1995 से नियमित 5 साल के अन्तराल पर पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव करवाये जाते हैं। इस प्रकार यह पंचायती राज संस्थाओं का 10 वाँ चुनाव था। परन्तु इस बार प्रदेश की भाजपा सरकार ने चुने जाने वाले जनप्रतिनिधियों के लिए ज़िला परिषद व पंचायत समिति के सदस्यों के लिए 10वीं पास व पंचायतों के सदस्य (वार्ड पंच) व सरपंच के लिए 8 वीं पास होना ज़रूरी कर दिया है। राजस्थान जैसे पिछडे प्रदेशों में जहाँ साक्षरता राष्ट्रीय औसत से भी कम है, जहाँ राष्ट्रीय औसत साक्षरता का 74.04 प्रतिशत है वहीं राजस्थान में यह 67.01 प्रतिशत है और 10वीं व 8वीं पास तो और भी कम ग्रामीण आबादी है। इस तरह एक बहुत बड़ी आबादी को इन शैक्षणिक योग्यता के नियमों की आड़ में सीधे-सीधे चुनाव लड़ने से वंचित कर दिया गया।

अब यह देखना होगा कि ये पंचायती राज संस्थाएँ किन वर्गों का प्रतिनिधित्व करती है। इनमें मुख्यत: गाँवों के कुलकों व धनी किसानों का दबदबा है। आरक्षण व्यवस्था के तहत यदि कोई महिला या दलित चुन भी लिया जाता है तो वे भी उन्हीं वर्गों की सेवा करते हैं। पंचायत समितियों व ज़िला परिषदों के चुनाव तो चुनावबाज़ पार्टियों द्वारा लड़े जाते हैं। व सरपंच व पंचों के चुनाव स्वतन्त्र उम्मीदवारों द्वारा लड़े जाते हैं। लेकिन मुख्यत: इन चुनावों में जातीय समीकरणों का ही बोलबाला होता है। बुर्जुआ जातिवाद का सबसे विद्रुप चेहरा इन चुनावों में देखने को मिलता है। साथ ही दारू, बोटी, नक़द रुपये पैसे का भी इन चुनावों में बहुत इस्तेमाल होता है। मनरेगा व अन्य चलने वाली सरकारी योजनाओं से भ्रष्टाचार के द्वारा होने वाली कमाई के बाद अब तो सरपंच का चुनाव भी बहुत ख़र्चीला चुनाव हो गया है। इसमें अब प्रत्याशी 50 लाख रुपये तक ख़र्च करने लगे हैं। क्योंकि इससे कई गुना कमाई होने की पूरी गारण्टी है। ज़ाहिर सी बात है इतना पैसा ख़र्च करना एक मध्यवर्गीय व्यक्ति या एक मध्यम किसान के भी बूते से बाहर की बात है। एक ग़रीब किसान या मज़दूर की तो बात ही दूसरी है। तब फिर गाँवों में जनप्रतिनिधि कौन चुने जाते हैं वही जो धनी व खाते-पिते किसानों का वर्ग है और शहरों के नज़दीकी गाँवों में प्रोपर्टी की क़ीमतों के फलस्वरूप अस्तित्व में आये वर्ग में से। इस वर्ग के पास अकूत पैसा आया है यह वर्ग अपनी प्रकृति से ही बर्बर, निरंकुश और घोर ग़ैरजनवादी है। इसके अलावा कृषि में पूँजीवादी विकास के फलस्वरूप अस्तित्व में आया पूँजीवादी किसानी वर्ग। इन्हीं वर्गों में से तथाकथित "ग्रामीण सरकार" के जनप्रतिनिधि चुने जाते हैं।

इन संस्थानों में अभी भी ग्रामीण जनता का विश्वास बना हुआ है। इसलिए इन चुनावों में मत प्रतिशत भी लोकसभा व विधानसभा चुनावों की तुलना में अधिक होता है। इसका प्रमुख कारण तृणमूल स्तर पर इन संस्थाओं के पास स्थानीय स्तर के बहुत से काम होते हैं जिनमें मनरेगा जैसी कल्याणकारी योजनाओं को लागू करना भी होता है दूसरा जो आदमी सरपंच चुना जाता है वो उनके गाँव का ही आदमी होता है उस तक उनकी पहुँच आसान होती है।

लेकिन इन पंचायती राज संस्थाओं से आम ग़रीब व मेहनतकश जनता को वस्तुत: कुछ भी हासिल नहीं हुआ है और ना ही उन्हें सत्ता में कोई भागीदारी मिली हैं। लेकिन इससे कुलकों व धनी किसानों की सत्ता में हिस्सेदारी बढ़ी है। इस पूँजीवादी व्यवस्था में उनकी छोटे हिस्सेदार के रूप में ही सही लेकिन भागीदारी सुनिश्चित की हो गयी। इस प्रकार इस व्यवस्था के सामाजिक आधारों का विस्तार ही हुआ है।

आरक्षण से जो दलित या महिला चुनकर आती है वो भी मुख्यत: भ्रष्ट तरीक़ों से पैसे कमाने पर ध्यान देते हैं। आम दलित आबादी व आम महिलाओं का उनसे कोई सरोकार नहीं होता है। महिलाएँ भी अधिकतर प्रभावशाली परिवारों व धनी किसानों या कुलकों के परिवारों से आती हैं और महिला सरपंच भी नाममात्र की सरपंच होती है। सरपंच के सारे कार्य तो उनके पति ही करते हैं। इसलिए गाँवो मे एक नया नाम चलन में आया है "सरपंच पति"। जो दलित चुनकर आते हैं वो भी प्रभावशाली जातियों के ही लिये काम करते हैं यहाँ तक की किसी गाँव में दलित सरपंच रहते हुए भी दलित उत्पीड़न की घटना हो जाती है तो कोई बड़ी बात नहीं है। अब दलित उत्पीड़न में मुख्य हाथ सवर्णों के स्थान पर मध्य किसानी जातियों का है जिनमें जाट, गुर्जर, यादव, माली आदि प्रमुख हैं। क्योंकि इन जातियों से नव धनिक वर्ग व धनी किसानों का वर्ग आता है। अब इनकी राजनैतिक आकांक्षाएँ भी बढ़ी है। पंचायती राज ने इनकी राजनैतिक आकांक्षाओं को सन्तुष्ट करने का काम किया है।

अब सवाल यह है कि अभी की जो पंचायत राज व्यवस्था है इसका विकल्प क्या हो। आज की जो सरकारी पंचायतें तो जनता की पंचायतों का स्थान तो ले ही नहीं सकतीं। बल्कि यह तो वे ही पंचायतें हो सकती हैं जो क्रान्तिकारी तरीक़े से गठित हों और उनमें शोषक वर्गों की कोई भागीदारी ना हो। जिनमें ग़रीब किसानों व खेतिहर मज़दूरों व दूसरे मेहनतकशों का पूरा प्रतिनिधित्व हो। ये पंचायतें ही आगे चलकर सत्ता का वास्तविक केन्द्र बनेंगी। यह ऐसी व्यवस्था में ही सम्भव है जिसमें उत्पादन के साधनों पर सम्पूर्ण जनता का स्वामित्व हो व राजकाज की व्यवस्था सार्विक मताधिकार से चुने हुए जनप्रतिनिधियों के हाथ में हो जिन्हें कभी भी वापस बुलाने का अधिकार हो। ऐसा क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य पंचायतों में ही सम्भव है, जो आगे चलकर सत्ता का वास्तविक केन्द्र बनेंगी।

- रवि

उत्तर-पूर्व की उत्पीड़ित राष्ट्रीयताएँ और दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता

(पेज 6 से आगे)

के साथ सांस्कृतिक-आत्मिक एकता का आधार तैयार करने के लिए सरकार ने शायद ही कभी कुछ किया हो। आलम तो यह है कि इतिहास की पुस्तकों में इस भूभाग का उल्लेख तक नहीं मिलता। इस क्षेत्र के लोगों की सांस्कृतिक विभिन्नता की मूल वजह यह भी है कि यहाँ का समाज ज़्यादा खुला है, उसमें औरतों को कहीं ज़्यादा आज़ादी और बराबरी हासिल है तथा यहाँ जाति-व्यवस्था अनुपस्थित है।

यदि भारतीय संघात्मक ढाँचा वास्तव में आत्मनिर्णय के अधिकार को मान्यता देने के बाद अस्तित्व में आता तो उत्तर-पूर्व भारतीय संघ के भीतर अपने-आपमें कई नृजातीय राष्ट्रों-राष्ट्रीयताओं का संघ होता और इन राष्ट्रों-राष्ट्रीयताओं के भीतर भी कई उपराष्ट्रीयताओं और भाषिक समुदायों के अपने स्वायत्तशासी क्षेत्र होते। परन्तु ऐसा न होकर अतिकेन्द्रीयकृत भारतीय संघात्मक ढाँचा ऊपर से थोप दिया गया। इस वजह से उत्तर-पूर्व की जनता दिल्ली की सत्ता को औपनिवेशिक काल की निरन्तरता में ही देखती रही। भारत की शक्तिशाली केन्द्रीय राज्यसत्ता से टकराकर उत्तर-पूर्व की छोटी-छोटी राज्य राष्ट्रीयताएँ भले ही अपनी मुक्ति न प्राप्त कर पायें, परन्तु वे हारेंगी भी नहीं। उनका संघर्ष तब तक चलता रहेगा जब तक उनके अलगाव और उपेक्षा की स्थिति बनी रहेगी।

-तपीश

दिल्ली में 'आम आदमी पार्टी' की अभूतपूर्व विजय और मज़दूर आन्दोलन के लिए कुछ सबक़

(पेज 1 से आगे)

के एक हिस्से को भी यह लगता है कि कोई और बेहतर विकल्प नहीं है इसलिए एक बार केजरीवाल सरकार को ही पूरा बहुमत देकर मौक़ा दिया जाना चाहिए। वास्तव में, केजरीवाल से जुड़े विभ्रम के टूटने के लिए यह ज़रूरी भी है कि एक बार दिल्ली की मेहनतकश जनता के दिल में अधूरी रह गयी कसर ढंग से निकल जाये।

चौथी बात – केजरीवाल की ज़बर्दस्त जीत ने यह दिखलाया है कि पूँजीवादी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था के संकट और अन्तरविरोध जब-जब एक हद से ज़्यादा बढ़ते हैं तो किसी न किसी श्रीमान सुथरे का उदय होता है, जोकि (1) गर्म से गर्म जुमलों का इस्तेमाल कर जनता के गुस्से को अभिव्यक्ति देता है और इस प्रकार उसे निकालता है; (2) जो जनता के दुख-दर्द का एक काल्पनिक कारण जनता के सामने पेश करता है, जैसेकि भ्रष्टाचार और नीयत आदि जैसे कारक; (3) जो वर्गों के संघर्ष को बार-बार नकारता है और वर्ग समन्वय की बातें करता है, जैसेकि केजरीवाल ने अमीरों और ग़रीबों के बँटवारे को ही नकार दिया है और बार-बार केवल सदाचारी और भ्रष्टाचारी के बँटवारे पर बल दिया है। केजरीवाल और 'आम आदमी पार्टी' इस समय पूँजीवादी व्यवस्था की ज़रूरत हैं। वे पूँजीवादी समाज और व्यवस्था के असमाधेय अन्तर-विरोधों के वर्ग चरित्र को छिपाने का काम करते हैं और वर्ग संघर्ष की चेतना को कुन्द करने का कार्य करते हैं। यही कार्य एक समय में भारत की पूँजीवादी राजनीति के इतिहास में जेपी आन्दोलन ने निभायी थी। आज एक दूसरे रूप में भारतीय पूँजीवादी राजनीति और अर्थव्यवस्था भयंकर संकट का शिकार है। उसका एक तानाशाहाना और फासीवादी समाधान नरेन्द्र मोदी की अगुवाई में भाजपा की साम्प्रदायिक फासीवादी सरकार पेश कर रही है, तो वहीं एक दूसरा समाधान 'आम आदमी पार्टी' और अरविन्द केजरीवाल पेश कर रहे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि केजरीवाल की लहर उनके अपने वायदों से मुकरने के साथ किनारे लगती जायेगी और आज जो लोग पूँजीवादी व्यवस्था की सौग़ातों से तंग आकर प्रतिक्रिया में केजरीवाल के पीछे गये हैं, उनमें से कई पहले से ज़्यादा प्रतिक्रिया में आकर भाजपा और संघ परिवार जैसी धुर दक्षिणपन्थी, फासीवादी ताक़तों के समर्थन में जायेंगे जोकि मज़दूर वर्ग के सबसे बड़े दुश्मन हैं।

क्या अरविन्द केजरीवाल और 'आम आदमी पार्टी' मेहनतकश ग़रीबों के दोस्त हैं?

हम मज़दूरों के लिए जो सबसे अहम सवाल है, वह यह है कि क्या अरविन्द केजरीवाल और उनकी 'आम आदमी पार्टी' हमारी दोस्त है? या क्या वह कांग्रेस या भाजपा जैसी पार्टियों से वास्तव में भिन्न है या उनसे बेहतर है? क्या हम उससे कुछ उम्मीद रख सकते हैं? इस बात की पड़ताल किस पैमाने पर की जानी चाहिए? हम मज़दूर केवल एक पैमाने पर इसकी पड़ताल कर सकते हैं और वह है मज़दूर वर्ग का पैमाना। आइये देखते हैं कि केजरीवाल और 'आम आदमी पार्टी' का इस बारे में क्या मानना है।

'अमीर और ग़रीब दोनों साथ में दिल्ली पर राज करेंगे।' क्या वाक़ई?

हाल ही में, 'आम आदमी पार्टी' के चाणक्य योगेन्द्र यादव ने बताया कि कि 'आम आदमी पार्टी' वर्गों के संघर्ष में भरोसा नहीं करती। उसका मानना है कि अमीरों से कुछ भी छीना नहीं जाना चाहिए। ग़रीबों को जो भी मिलेगा वह भ्रष्टाचार ख़त्म करके मिलना चाहिए, न कि अमीरों से छीनकर। यही बात अरविन्द केजरीवाल ने भी कई बार अलग-अलग टीवी चैनलों को कही है। लेकिन इस पूरी बात में एक बड़ा गोरखधन्धा है। **हम मज़दूरों के लिए सोचने का सवाल यह है कि अमीर अमीर हुआ कैसे? ग़रीब ग़रीब क्यों है? और अमीर के अमीर रहते और ग़रीब के ग़रीब रहते समाज में ख़ुशहाली कैसे आयेगी? समाज में धन-सम्पदा पैदा कौन करता है? उसका बँटवारा कैसे होता है? क्या हम जानते नहीं हैं कि अमीर वर्ग, मालिक वर्ग, पूँजीपति वर्ग अमीर इसीलिए है क्योंकि वह हम मज़दूरों की मेहनत को लूटता है? क्या हम जानते नहीं हैं उसकी अमीरी, उसकी शानो-शौक़त और ऐयाशियों की क़ीमत हम मज़दूर अपना ख़ून और पसीना बहाकर अदा करते हैं?**

हम अच्छी तरह से जानते हैं कि पूँजीपतियों की भारी सम्पत्ति आसमान से नहीं टपकी है; उनका विशालकाय बैंक बैलेंस 'ईश्वर की देन' नहीं है; उनके नौकरों-चाकरों की फ़ौज 'देवताओं' ने नहीं भिजवायी है! इस सबकी क़ीमत हम अदा करते हैं। निजी सम्पत्ति और कुछ नहीं बल्कि पूँजी है; पैसा अपने आपमें कुछ भी नहीं अगर उससे ख़रीदने के लिए तमाम वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन न हो; वस्तुएँ व सेवाएँ दुकानदार, व्यापारी, पूँजीपति, मालिक या ठेकेदार नहीं पैदा करते! **उन्हें हम मज़दूर बनाते हैं! सुई से लेकर जहाज़ तक – हरेक वस्तु! इन वस्तुओं को बनाने के बावजूद ये वस्तुएँ हमसे छीन ली जाती हैं और हमें बदले में मुश्किल से जीने की ख़ुराक मिलती है। यही लूट तो हमारी ग़रीब का कारण है!** ऐसे में, हम तब तक ग़रीब बने रहेंगे जब तक कि पूरा उत्पादन पूँजीपतियों के हाथों में है, जब तक कि यह उत्पादन समाज की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए नहीं बल्कि पूँजीपति के मुनाफ़े के लिए होता हो। पूँजीपति की मुनाफ़े की शर्त हमारी ग़रीबी और बदहाली है! हमें ग़रीब, बेकार और बदहाल बनाये बग़ैर पूँजीपति अपना उत्पादन कम लागत में कर ही नहीं सकता और मुनाफ़ा कमा ही नहीं सकता। आपस में कुत्तों की तरह लड़ते पूँजीपति पर हमेशा बाज़ार का यह दबाव काम करता है कि वह हमें लूटे और बरबाद करे; वह हमें कम-से-कम मज़दूरी दे और हमसे ज़्यादा से ज़्यादा काम करवाये! चाहे पूँजीपति अच्छी नीयत और सन्त प्रकृति का ही क्यों न हो, अगर उसे पूँजीपति के तौर पर ज़िन्दा रहना है तो उसे मज़दूर को लूटना होगा, उसे बेकारी के दलदल में धकेलना ही होगा। सवाल नीयत या इरादे का है ही नहीं, सवाल वर्ग का है! सवाल पूरी व्यवस्था और सामाजिक ढाँचे का है! केजरीवाल और 'आम आदमी पार्टी' इस पूरी पूँजीवादी व्यवस्था पर कहीं सवाल नहीं खड़ा करते, बल्कि उसका समर्थन करते हैं। वे बस उस भ्रष्टाचार को ख़त्म करने की बात करते हैं जिससे मध्यवर्ग दुखी रहता है और पूँजीपति वर्ग परेशान रहता है। इसीलिए वे ग़रीबी और अमीरी का बँटवार ख़त्म करने की बात नहीं करते, बल्कि यह हवा-हवाई बात करते हैं कि 'दिल्ली पर ग़रीब और अमीर साथ में राज करेंगे और ख़ुशी-ख़ुशी रहेंगे!' ग़रीब के ग़रीब रहते और अमीर के अमीर रहते, ऐसा मुमकिन नहीं है क्योंकि अमीर इसी शर्त पर अमीर होता है कि ग़रीब और ग़रीब होता जाये। समृद्धि मज़दूर वर्ग अपनी मेहनत झोंक कर, अपनी ज़िन्दगी और वक़्त लगाकर पैदा करता है। वह उससे पूँजीपति ले लेता है और बदले में उसे जीने की ख़ुराक भर दे देता है। इसी प्रक्रिया से अमीर अमीर बनता है और मज़दूर ग़रीब होता जाता है। ऐसे में, केजरीवाल सरकार का यह कहना कि अमीर से वह कुछ नहीं लेगी और ग़रीब को सबकुछ देगी, मज़ाकिया है और केवल यह दिखाता है कि या तो केजरीवाल और उसके लग्गू-भग्गू मूर्ख हैं, या फिर दिल्ली के ग़रीब मज़दूरों को मूर्ख बना रहे हैं।

क्या भ्रष्टाचार ख़त्म होने से मज़दूरों का शोषण ख़त्म हो जायेगा?

केजरीवाल सरकार अगर सारा भ्रष्टाचार ख़त्म कर भी दे, तो इससे मज़दूर की लूट ख़त्म नहीं होती। अगर पूँजीपति और मालिक एकदम संविधान और श्रम क़ानूनों के अनुसार भी चले तो एक मज़दूर को कितनी मज़दूरी मिल जायेगी? अगर दिल्ली राज्य में न्यूनतम मज़दूरी के क़ानून को पूर्णतः लागू भी कर दिया जाये तो एक मज़दूर को ज़्यादा से ज़्यादा 10-11 हज़ार रुपये तक ही मिलेंगे। ऐसे में, हम मज़दूर क्या ख़ुशहाल हो जायेंगे? वह भी दिल्ली में जहाँ ज़िन्दगी जीना इतना महँगा है कि दो जून की रोटी भी मुश्किल से कमायी जाती है? **वैसे भी केजरीवाल श्रम क़ानूनों के उल्लंघन के मसले को कभी नहीं उठाते, हालाँकि यह सबसे बड़ा भ्रष्टाचार है क्योंकि दिल्ली के 60 लाख से भी ज़्यादा मज़दूरों के लिए यह सबसे बड़ा मसला है। यह वह भ्रष्टाचार है जिससे कि दिल्ली की आबादी का सबसे बड़ा हिस्सा प्रभावित होता है। लेकिन केजरीवाल और उनकी 'आम आदमी पार्टी' इसके बारे में चुप्पी साधे रहती है। इसका कारण यह है कि 'आप' के समर्थकों और नेताओं तक का एक बड़ा हिस्सा छोटे और मँझोले मालिकों, ठेकेदारों, व्यापारियों, प्रापर्टी डीलरों और दुकानदारों से आता है। पिछली 'आप' सरकार का श्रम मन्त्री गिरीश सोनी स्वयं एक कारख़ाना-मालिक था!** इसी से पता चलता है कि मज़दूरों के मुद्दों पर 'आप' का क्या रुख़ है।

'आम आदमी पार्टी' की छोटे कारख़ाना मालिकों, ठेकेदारों, दलालों और दुकानदारों से यारी

केजरीवाल ने हाल ही में एक टीवी इण्टरव्यू में माना है कि अपनी पिछली 49 दिनों की सरकार के दौरान उन्होंने टैक्स चोरी करने वाली भ्रष्टाचारी दुकानदारों और व्यापारियों पर छापा मारने से सरकारी कर विभाग को रोका था। उनका तर्क यह था कि ये सरकारी विभाग और उनके कर्मचारी कर चोरी करने वाले दुकानदारों से रिश्वत लेते थे। यानी कि सरकारी विभाग के भ्रष्टाचार और व्यापारियों के भ्रष्टाचार में केजरीवाल ने केवल सरकारी विभाग और कर्मचारियों के भ्रष्टाचार को निशाना बनाया और व्यापारियों के भ्रष्टाचार को छोड़ दिया या फिर बचाया। यही केजरीवाल की पूरी नीति है। वह केवल सरकारी अमलों और नेताओं के भ्रष्टाचार को निशाना बनाते हैं और वह भी वह भ्रष्टाचार जिससे दुकानदारों, पूँजीपतियों आदि को नुक़सान होता है। इसीलिए केजरीवाल ने कहा था कि वह बनिया जाति से आते हैं और बनियों यानी कि व्यापारियों का दुख-दर्द जानते हैं! केजरीवाल ने विशेष तौर पर छोटे मालिकों, उद्यमियों और दुकानदारों को भरोसा दिलाया कि उन्हें 'आप' की सरकार से डरने की ज़रूरत नहीं है! उन्हें तो सरकारी विभाग के भ्रष्टाचार-रोधी छापों से मुक्ति मिलेगी!

साथ ही, केजरीवाल ने पूँजीपतियों से वायदा किया है कि वह दिल्ली में धन्धा लगाने और चलाने को और आसान बना देंगे। कैसे? आपको पता होगा कि कोई भी कारख़ाना या दुकान लगाने से पहले पूँजीपतियों को तमाम सरकारी जाँचों से गुज़रना पड़ता है, जैसे पर्यावरण-सम्बन्धी जाँच, श्रम क़ानून सम्बन्धी जाँच, कर-सम्बन्धी जाँच आदि। केजरीवाल ने वायदा किया है कि इन सभी जाँचों (इंस्पेक्शनों) से पूँजीपतियों को छुटकारा मिलेगा! लेकिन मज़दूरों को श्रम क़ानूनों से मिलने वाले अधिकार सुनिश्चित किये जायेंगे, श्रम विभाग में लेबर इंस्पेक्टरों और फ़ैक्टरी इंस्पेक्टरों की संख्या बढ़ायी जायेगी, श्रम क़ानूनों को लागू करने को सुनिश्चित किया जायेगा, ऐसी माँगों पर केजरीवाल कोई ठोस वायदा नहीं करते हैं। इसी से पता चलता है कि केजरीवाल और उनकी 'आम आदमी पार्टी' मज़दूरों के साथ वोट के लिए धोखा कर रही है, जबकि उसका असली मक़सद है दिल्ली के पूँजीपतियों और विशेष तौर पर छोटे और मँझोले पूँजीपतियों की सेवा करना।

ठेका मज़दूरी ख़त्म करने के वायदे से पिछली बार क्यों मुकर गयी थी केजरीवाल सरकार और इस बार मज़दूरों को धोखा देने की उसकी रणनीति क्या है?

यह सच है कि केजरीवाल ने पिछले चुनावों में ठेका प्रथा का उन्मूलन करने का वायदा किया था। लेकिन 49 दिनों के दौरान केजरीवाल सरकार इस वायदे से मुकर गयी थी। उसके श्रम मन्त्री गिरीश सोनी ने 6 फ़रवरी को हज़ारों मज़दूरों के एक प्रदर्शन के सामने खुलकर यह बात कही थी कि वह ठेका प्रथा नहीं समाप्त कर सकते क्योंकि उन्हें मालिकों, प्रबन्धन और ठेकेदारों के हितों को भी देखना है! इस बार ठेका प्रथा उन्मूलन का वायदा 'आम आदमी पार्टी' ने अपने घोषणापत्र में तो किया है, लेकिन इस पर ज़्यादा बल नहीं दिया गया है। इसका कारण यह है कि पिछली 49 दिनों की सरकार के दौरान केजरीवाल सरकार को दिल्ली के ठेका मज़दूरों और कर्मचारियों ने बार-बार घेरा था। डीटीसी के ठेकाकर्मियों से लेकर दिल्ली मेट्रो रेल, दिल्ली के विभिन्न औद्योगिक इलाक़ों के ठेका मज़दूरों, ठेके पर काम करने वाले होमगार्डों, शिक्षकों आदि ने केजरीवाल सरकार को बार-बार घेरकर इस वायदे की याद दिलायी थी। 6 फ़रवरी का प्रदर्शन इस कड़ी में आख़िरी बड़ा प्रदर्शन था जिसके एक हफ़्ते बाद ही केजरीवाल गद्दी छोड़कर भाग खड़े हुए थे। उन्हें भी समझ में आ गया था कि इस माँग को वह पूरा नहीं कर सकते क्योंकि फिर दिल्ली के छोटे मालिक, व्यापारी, ठेकेदार आदि 'आम आदमी पार्टी' से नाराज़ हो जायेंगे। फिर 'आम आदमी पार्टी' को चन्दा कौन देगा? फिर 'आम आदमी पार्टी' के वे तमाम नेता कहाँ जायेंगे जो ख़ुद कारख़ाना-मालिक, ठेकेदार या दुकानदार हैं? इस बार केजरीवाल सरकार ने एक बदलाव किया है। उसने पिछली बार की तरह यह नहीं कहा है कि वह छह महीनों में आधे वायदों को पूरा कर देगी। इस बार केजरीवाल सरकार ने कहा है कि ये वायदे 5 साल में पूरे किये जायेंगे। उसकी रणनीति यह है कि शुरुआती कुछ महीने कुछ प्रतीकात्मक माँगों को पूरा करके, मध्यवर्ग को ख़ुश करके, और भ्रष्टाचार आदि पर दिखावटी हो-हल्ला मचाकर काट दिये जायें। मज़दूरों को आश्वासन दे-देकर इन्तज़ार कराया जाये और उनके इस वायदे को भूलने का **इन्तज़ार किया जाये। यानी, केजरीवाल सरकार इस बार उच्च मध्यवर्ग और मँझोले मध्यवर्ग से की गयी कुछ प्रतीकात्मक माँगों को पहले पूरा करेगी और मज़दूरों को ठेंगा दिखाते हुए 5 साल बिता देगी। यही उनकी योजना है।**

(पेज 9 पर जारी)

दिल्ली में 'आम आदमी पार्टी' की अभूतपूर्व विजय और मज़दूर आन्दोलन के लिए कुछ सबक़

(पेज 8 से आगे)

बिजली के बिल आधे करने और पानी मुफ़्त करने के वायदों के पीछे केजरीवाल सरकार की रणनीति

बिजली के बिल आधे करने के बारे में भी केजरीवाल सरकार इस बार दूसरी भाषा में बात कर रही है, जिस पर किसी का ध्यान ठीक तरीक़े से नहीं गया है। **वह कह रही है कि बिजली कम्पनियों का ऑडिट कराये जाने तक सरकार अपने ख़ज़ाने से सब्सिडी देकर बिजली के बिल आधे करेगी और ऑडिट का नतीजा आने के बाद बिजली के बिल तय किये जायेंगे।** पिछली बार भी जब सब्सिडी देना मुश्किल हो गया था तो केजरीवाल सरकार ने यह तर्क दिया था। लेकिन पिछली बार चुनावों से पहले केजरीवाल ने यह नहीं कहा था कि बिजली के बिल केवल तब तक आधे रहेंगे, जब तक कि ऑडिट नहीं हो जाता। यह बात 49 दिनों की सरकार के दौरान उन्होंने कही थी, जब उन्हें यह समझ में आ गया था कि अनन्त काल तक सैकड़ों करोड़ रुपयों की सब्सिडी नहीं दी जा सकती है। ख़ैर, यह ऑडिट 'कैग' नामक एक सरकारी संस्था करती है। अब तक के इतिहास में इस संस्था ने कोई ऐसा ऑडिट नहीं किया है जोकि बड़ी कम्पनियों के सीधे ख़िलाफ़ जाये। दिल्ली में बिजली पैदा नहीं होती बल्कि उसे बाहर से ख़रीदना पड़ता है। इस बिजली के वितरण का कार्य पहले सरकारी विभाग 'दिल्ली विद्युत बोर्ड' करता था। फिर इसे दिल्ली के अलग-अलग इलाक़ों में टाटा की कम्पनी एनडीपीएल और अम्बानी की कम्पनी बीएसईएस को सौंप दिया गया। 'कैग' के ऑडिट में स्पष्ट हो जायेगा कि इन कम्पनियों को मुनाफ़ा कमाते हुए यदि बिजली का वितरण करना है तो बिजली के बिल आधे नहीं किये जा सकते। और फिर केजरीवाल सरकार बिजली के बिलों में मामूली-सी कटौती करके हाथ खड़े कर देगी और कहेगी कि 'जब ऑडिट के नतीजे में यह सिद्ध हो गया है कि बिजली के बिलों में ज़्यादा कटौती नहीं की जा सकती, तो हम क्या कर सकते हैं।' ऐसा भी हो सकता है कि बिलों में कोई कटौती न की जाये! बिजली के बिलों में कोई ख़ास कटौती तभी हो सकती है जबकि बिजली वितरण का निजीकरण समाप्त कर दिया जाये। पिछली बार केजरीवाल ने संकेत दिये थे कि अगर कोई समाधान नहीं बचेगा तो निजीकरण समाप्त कर दिया जायेगा। लेकिन इस बार वह कह रहे हैं कि देश में बहुतेरी कम्पनियाँ हैं, उनमें से किसी और को बिजली वितरण का ठेका दे दिया जायेगा! निश्चित तौर पर, कोई भी कम्पनी मुनाफ़े के लिए ठेका लेगी, दिल्ली की जनता को सस्ती बिजली देने के लिए नहीं और कितनी भी प्रतियोगिता हो, निजीकरण के तहत बिजली के बिल एक स्तर से नीचे नहीं आयेंगे। निजीकरण के तहत बिजली के बिल हमेशा के लिए आधे कर दिये जायें यह तो सम्भव ही नहीं है क्योंकि केजरीवाल सरकार अनन्तकाल तक सरकारी ख़ज़ाने से सब्सिडी नहीं दे सकती है। ऐसे में, सरकार के पास अपने कर्मचारियों को वेतन देने के पैसे भी नहीं बचेंगे! यही बात पानी को मुफ़्त करने पर भी लागू होती है। लम्बे समय तक ऐसा कर पाना पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे में रहते हुए बेहद मुश्किल है।

केजरीवाल सरकार ने इस बार झुग्गीवासियों से एक बार फिर से वायदा किया है कि उन्हें उनकी झुग्गी के स्थान पर ही पक्के मकान दिये जायेंगे। यह भी एक हवा-हवाई वायदा है और दिल्ली के झुग्गीवासी पाँच साल तक इसका इन्तज़ार ही करते रह जायेंगे। इसका कारण यह है कि तमाम झुग्गियाँ रेलवे व अन्य कई केन्द्रीय विभागों के स्थान पर बनी हैं और उसी जगह पर मालिकाने के साथ पक्के मकान देने का कार्य घुमावदार नौकरशाहाना पेच में ही फँसकर रह जायेगा। इसी प्रकार के अन्य कई ग़रीबों को लुभाने वाले झूठे वायदे करके केजरीवाल सरकार इस बार भारी बहुमत के साथ सत्ता में आयी है।

'आम आदमी पार्टी' के बारे में मज़दूरों के लिए कुछ अन्य ज़रूरी बातें

हम मज़दूरों और मेहनतकशों को कुछ बातें समझ लेनी चाहिए: जो पार्टी पूँजीपतियों और मज़दूरों में समझौते की बात करते हुए ख़ुशहाली का वायदा करती है वह आपको धोखा दे रही है; दूसरी बात, जिस पार्टी के तमाम नेता स्वयं कारख़ानेदार, ठेकेदार, व्यापारी, दुकानदार, भूतपूर्व खाते-पीते नौकरशाह और एनजीओ चलाने वाले धन्धेबाज़ हों, वह मज़दूरों का भला कैसे कर सकती है? सत्तासीन हुई केजरीवाल सरकार मज़दूरों को ठेका प्रथा से मुक्ति देने के लिए एक ऐसे विधेयक का वायदा क्यों नहीं करती जोकि दिल्ली राज्य में सभी नियमित प्रकृति के कार्य पर ठेका मज़दूरी पर प्रतिबन्ध लगा देगा? अगर भ्रष्टाचार के प्रश्न पर केन्द्रीय क़ानून होने के बावजूद दिल्ली राज्य स्तर पर एक जनलोकपाल विधेयक पारित करवाया जा सकता है, तो फिर केन्द्रीय ठेका मज़दूरी क़ानून के कमज़ोर होने पर दिल्ली राज्य स्तर पर एक ठेका मज़दूर उन्मूलन विधेयक क्यों नहीं पारित करवाया जा सकता है? अगर भ्रष्टाचार के लिए पिछली बार की तरह एक हेल्पलाइन शुरू की जा सकती है, तो मज़दूरों के ख़िलाफ़ होने वाले अन्याय और भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ एक अलग मज़दूर हेल्पलाइन क्यों नहीं शुरू की जा सकती है? दिल्ली राज्य में जीवन के महँगे होने के मद्देनज़र केजरीवाल सरकार यह वायदा क्यों नहीं करती कि वह न्यूनतम मज़दूरी को दिल्ली राज्य स्तर पर बढ़ाकर कम-से-कम 15000 रुपये तक करेगी? इसलिए क्योंकि ये माँगें पूँजीपतियों और मालिकों के ख़िलाफ़ जायेंगी, जिनसे दरवाज़े के पीछे केजरीवाल सरकार और 'आम आदमी पार्टी' की यारी है। केजरीवाल सरकार ग़रीबों और मज़दूरों को बस कुछ लोकलुभावन नारे दे सकती है और कुछ प्रतीकात्मक सुधार के क़दम उठा सकती है। मज़दूरों की असली समस्याओं को दूर करना उसके लिए सम्भव नहीं है क्योंकि वह मज़दूर वर्ग की पार्टी नहीं है, बल्कि छोटे मालिकों, ठेकेदारों, दुकानदारों और खाते-पीते मध्यवर्ग की पार्टी है। इसलिए 'आम आदमी पार्टी' मज़दूरों की मित्र नहीं है, बल्कि मज़दूरों को सबसे ख़तरनाक किस्म का धोखा देने वाली पार्टी है। **सवाल यह उठता है कि अब जबकि केजरीवाल की अगुवाई में 'आम आदमी पार्टी' अभूतपूर्व बहुमत के साथ दिल्ली में सरकार बना रही है तो हम मज़दूरों को, जिनके वोटों के बूते केजरीवाल को मुख्यमन्त्री की गद्दी नसीब हुई है, क्या करना चाहिए?**

हम मज़दूरों को क्या करना चाहिए?

हम मज़दूरों को केजरीवाल सरकार को बार-बार याद दिलाना होगा कि उसने हमसे क्या वायदा किया है। **हमें मुख्य तौर पर दो वायदों को पूरा करने के लिए केजरीवाल सरकार को बार-बार घेरना होगा। लोग जब सत्ता में पहुँच जाते हैं तो वायदे भूल जाते हैं क्योंकि वायदे किये ही सत्ता में पहुँचने के लिए जाते हैं। ऐसे में, हमें बार-बार इन वायदों की याददिहानी करनी होती है।** हमारे लिए दो वायदे सबसे अहम हैं। पहला है ठेका प्रथा को समाप्त करने का वायदा। और दूसरा है झुग्गीवासियों को उनकी झुग्गी के स्थान पर पक्के मकान देने का वायदा।

इसमें एक वायदा है जिसके बारे में केजरीवाल सरकार कह सकती है कि इसमें वक़्त लगेगा और पाँच साल के लिए इन्तज़ार किया जाये। यह वायदा है झुग्गियों के स्थान पर पक्के मकान देने का वायदा। इसके लिए मज़दूरों को यह माँग करनी चाहिए कि केजरीवाल सरकार पक्के मकान देने की एक पूरी योजना प्रस्तुत करे जिसमें कि अलग-अलग इलाक़ों में पक्के मकान देने की एक अन्तिम तिथि दी जाये, चाहे वह दो, तीन या चार साल बाद ही क्यों न हों। जब तक हम एक समयबद्ध वायदा नहीं लेते तब तक झुग्गियों की जगह पक्के मकान देने के वायदे का कोई अर्थ नहीं होगा। दूसरी बात यह कि हमें केजरीवाल सरकार से इस बाबत ठोस वायदा लेने के लिए दबाव बनाना चाहिए कि जब तक पक्के मकान नहीं दिये जाते, एक भी झुग्गी उजाड़ी नहीं जायेगी। क्योंकि अगर ऐसा होगा तो झुग्गियों के स्थान पर पक्के मकानों के वायदे का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा।

दूसरा वायदा ऐसा है जिसे तुरन्त पूरा करने की शुरुआत की जा सकती है। यह वायदा है ठेका प्रथा समाप्त करने का वायदा। इस बाबत दिल्ली के ठेका मज़दूरों को संगठित होकर यह माँग करनी चाहिए कि दिल्ली राज्य के स्तर पर केजरीवाल सरकार एक ऐसा क़ानून पारित करे जोकि सभी नियमित प्रकृति के कार्यों पर ठेका मज़दूर रखने पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाये। ऐसे क़ानून के बिना ठेका मज़दूरी का उन्मूलन दिल्ली में हो ही नहीं सकता है। केन्द्रीय क़ानून में मौजूद तमाम कमियों का इस्तेमाल करके ठेकेदार और मालिक ठेका प्रथा को जारी रखेंगे। इसलिए अगर केन्द्रीय भ्रष्टाचार-रोधी क़ानून के कमज़ोर होने पर दिल्ली राज्य स्तर पर एक जनलोकपाल क़ानून पारित किया जा सकता है, तो फिर एक ठेका उन्मूलन क़ानून भी पारित किया जा सकता है। अगर केजरीवाल सरकार इससे मुकरती है, तो साफ़ है कि ठेका मज़दूरी उन्मूलन का उसका वायदा झूठा है। ऐसा क़ानून बनने के बाद दिल्ली के मज़दूरों को यह माँग भी करनी चाहिए कि यह क़ानून सही ढंग से लागू हो सके इसके लिए उचित प्रबन्ध किये जाने चाहिए। इसमें सबसे महत्वपूर्ण है दिल्ली राज्य सरकार के श्रम विभाग में कर्मचारियों की संख्या में बढ़ोत्तरी करना। पहले भी सरकारें बार-बार यह कहकर पल्ला झाड़ती रही हैं कि श्रम विभाग में पर्याप्त लेबर इंस्पेक्टर व फ़ैक्टरी इंस्पेक्टर नहीं हैं। जब दिल्ली राज्य में लाखों की संख्या में ग्रेजुएट व पोस्ट-ग्रेजुएट बेरोज़गार घूम रहे हैं तो केजरीवाल सरकार श्रम विभाग में भारी पैमाने पर भर्ती करके रोज़गार भी पैदा कर सकती है और साथ ही श्रम क़ानूनों के कार्यान्वयन को भी सुनिश्चित कर सकती है। ठेका प्रथा के उन्मूलन सम्बन्धी माँग को पुरज़ोर तरीक़े से उठाने के लिए दिल्ली के सभी निजी व सार्वजनिक उपक्रमों व विभागों में कार्य करने वाले ठेका कर्मचारियों व मज़दूरों को गोलबन्द और संगठित किया जाना चाहिए। केवल इसी तरीक़े से यह सिद्ध हो सकेगा कि केजरीवाल सरकार वाकई ग़रीबपरस्त है या फिर उसने वोटों के लिए दिल्ली के ग़रीबों के साथ एक भारी धोखा किया है।

एक अन्य माँग जिसे दिल्ली के मज़दूरों और निम्न मध्यवर्ग के नौजवानों को ख़ास तौर पर उठानी चाहिए, वह है दिल्ली राज्य स्तर पर एक रोज़गार गारण्टी विधेयक की माँग। हमारा तर्क यह है कि अगर कांग्रेस-नीत यूपीए सरकार ने देश के स्तर पर एक ग्रामीण रोज़गार गारण्टी क़ानून पारित किया था, तो फिर दिल्ली राज्य पर जनता को रोज़गार गारण्टी क़ानून क्यों नहीं दिया जाना चाहिए? हालाँकि मनरेगा में केवल 100 दिनों का रोज़गार मिलता था और उसके लिए भी न्यूनतम मज़दूरी नहीं मिलती थी, यद्यपि हमें इस अधिकार की माँग करनी चाहिए और यह भी माँग उठानी चाहिए कि इस क़ानून के तहत 100 दिन नहीं बल्कि कम-से-कम 200 दिनों का रोज़गार मिलना चाहिए और उसके एवज़ में दिल्ली राज्य की न्यूनतम मज़दूरी मिलनी चाहिए। इस क़ानून में इस बात का प्रावधान होना चाहिए कि अगर दिल्ली सरकार दिल्ली के किसी नागरिक को रोज़गार नहीं दे पाती तो फिर उसे गुज़ारा-योग्य बेरोज़गारी भत्ता दिया जाना चाहिए। यानी कि उत्तर प्रदेश सरकार के समान 1000-1200 रुपये का बेरोज़गारी भत्ता नहीं बल्कि राष्ट्रीय न्यूनतम मज़दूरी के बराबर बेरोज़गारी भत्ता मिलना चाहिए। इस माँग से दिल्ली के मज़दूरों को कुछ सुरक्षा मिल सकती है, जोकि औद्योगिक मन्दी के चलते आये दिन बेकारी की मार झेलते हैं। साथ ही इस माँग के पूरा होने से दिल्ली के लाखों बेरोज़गारी युवाओं को भी रोज़गार मिल सकता है।

ये तीन बुनियादी माँगें उठाकर दिल्ली के मज़दूरों को संघर्ष करना चाहिए। आने वाले पाँच वर्षों में यह संघर्ष ही स्पष्ट करेगा कि 'आम आदमी पार्टी' और केजरीवाल के 'सदाचार' और 'अच्छी नीयत' के हो-हल्ले के पीछे का सच क्या है। हम मज़दूरों के सामने भी इनका असली चरित्र स्पष्ट होगा। मज़दूर आन्दोलन को 'आम आदमी पार्टी' का पिछलग्गू बनने की बजाय अपनी राजनीति की स्वतन्त्रता और स्वायत्तता को बनाये रखना चाहिए। मज़दूर वर्ग यदि अपनी राजनीति की स्वतन्त्रता और स्वायत्ता को नहीं बनाये रखता, अगर वह अपने अलग स्वतन्त्र संगठनों की स्वायत्तता को नहीं बनाये रखता तो फिर वह एक अपनी शक्ति खो बैठता है। ऐसी सूरत में वह अपने ख़िलाफ़ किये जाने वाले धोखों और षड्यन्त्रों से नहीं लड़ सकता। वह निष्क्रिय हो जाता है, अशक्त हो जाता है। इसलिए 'आम आदमी पार्टी' की राजनीति के वर्ग चरित्र को समझने की आवश्यकता है। इस पार्टी ने जो वायदे हमसे किये हैं, तो उनमें से एक को भी पूरा करवाने के लिए हम मज़दूरों को अपने स्वतन्त्र आन्दोलन के ज़रिये केजरीवाल सरकार पर दबाव बनाना चाहिए, न कि उनकी पूँछ पकड़कर चलना चाहिए। अगर हमने चौकसी खोई, अगर हमने अपने स्वतन्त्र और स्वायत्त मज़दूर वर्गीय आन्दोलन को कमज़ोर होने दिया, तो आने वाले समय में हमें सिर्फ़ धोखा मिलेगा। चूँकि केजरीवाल सरकार ने हम मज़दूरों से बड़े-बड़े वायदे किये हैं इसलिए हमें अपने स्वतन्त्र मज़दूर वर्गीय आन्दोलन के बूते इनकी छाती पर सवार रहना होगा और इन्हें अपने वायदों से मुकरने का मौक़ा नहीं देना होगा।

पंजाब में चुनावी पार्टियों की नशा-विरोधी मुहिम का ढोंग

पंजाब में आम आबादी, ख़ासकर नौजवानों को शिकार बना रहे नशे के कारोबार का मुद्दा पिछले काफ़ी समय से गर्माया हुआ है। शासक पार्टी अकाली दल से लेकर विरोधी संसदीय पार्टियाँ भी नशों का विरोध करने में लगी हुई हैं। कहीं अकाली दल सरहद पर धरना देने का ड्रामा कर रही है तो कहीं भाजपा नशों के ख़िलाफ़ जागरूकता रैली करने का ऐलान कर रही है तो कांग्रेसियों द्वारा की गयी ललकार रैली में उनकी सरकार आने पर नशों को जड़ से मिटाने की बातें की जा रही हैं। सभी पार्टियाँ इस मुद्दे को लेकर एक-दूजे को पूरा ज़ोर लगाकर बुरा-भला कह रही हैं, इस मुद्दे का फ़ायदा उठाकर अपना वोट बैंक पक्का करने के लिए राजनीतिक रोटियाँ सेंक रही हैं।

हुक्मरानों द्वारा नशों का विरोध एक बात तो दिखाता है कि ये सभी बुर्जुआ पार्टियाँ लोगों के गुस्से से बुरी तरह से डरी हुई हैं। इसके चलते अपनी बची-खुची इज़्ज़त बचाने के लिए इस तरह की ड्रामेबाज़ियाँ करने पर मजबूर हैं। अकाली दल नशों को ख़त्म करना केन्द्र सरकार की ज़िम्मेदारी कह रही है और सरहद पर नशों की तस्करी पर रोक लगाने के लिए केन्द्र सरकार को अर्ज़ियाँ भेज रही है। लेकिन हाल में नशीले पदार्थों की तस्करी पर हुए खुलासों ने सभी की पोल खोल दी है कि कैसे पंजाब में अकाली दल (बादल) के बड़े-छोटे नेताओं से लेकर अधिकतर अफ़सर तक इस धन्धे में पूरी तरह शामिल हैं।

इस व्यवस्था में जहाँ हर चीज़ के केन्द्र में सिर्फ़ मुनाफ़ा है और जहाँ इंसान की ज़रूरतें गौण हो जाती हैं – वहाँ हर वह धन्धा चलाया जाता है जिसमें अधिक से अधिक पैसा कमाया जा सके। भले ही यह पैसा लोगों की लाशें बिछाकर ही क्यों न कमाया जाये। पंजाब में फल-फूल रहा नशे का कारोबार और नशे में डूब रही जवानी इसका जीता-जागता सबूत है। नशा इस व्यवस्था में एक अतिलाभदायक धन्धा है। हर वर्ष सरकार (चाहे किसी भी पार्टी की हो) हज़ारों करोड़ रुपये की शराब लोगों को पिलाकर अपना ख़ज़ाना भरती है। नशीले पदार्थों की तस्करी के रूप में होने वाली कमाई इससे अलग है। सन् 2012-13 में पंजाब सरकार को सिर्फ़ शराब की बिक्री से लगभग 3500 करोड़ रुपये की आमदनी हुई थी जो अगले वित्तीय वर्ष में बढ़कर 4,000 करोड़ रुपये हो गयी। अब चालू वर्ष के लिए लक्ष्य 4,700 करोड़ रुपये रखा गया है। सन् 2006 तक पंजाब में शराब के ठेकों की संख्या 4192 थी जो अकाली-भाजपा सरकार की मेहरबानी से 12,188 हो चुकी है। शराब की आपूर्ति के लिए जहाँ पंजाब में सिर्फ़ चार फ़ैक्ट्रियाँ थीं आज इनकी संख्या बढ़कर ग्यारह हो चुकी है। शराब की कई नई डिस्टिलरियों को मंज़ूरी देने की तैयारियाँ भी चल रही हैं। इस तरह शराब से लेकर ड्रग्स की तस्करी का धन्धा अत्यधिक कमाई का साधन बन चुका है। सरकारों के अलावा शराब उद्योग के मालिकों को इसमें से बेहिसाब मुनाफ़ा होता है। सरकार इन्हें टैक्सों से छूट देती है, नये ठेके खोलने में मदद करती है। इसके बदले में शराब से कमाये मुनाफ़े में से हाकिमों को भी क़ानूनी-ग़ैरक़ानूनी ढंग से अपना हिस्सा मिलता है। इनमें से कई व्यापारी और ठेकेदार कांग्रेस, भाजपा और अकाली दल जैसी पार्टियों से ख़ुद ही जुड़े हुए हैं। भोला ड्रग केस मामले में तो सरहद पार से होती ड्रग्स की तस्करी में अकाली मन्त्री और बादल परिवार के रिश्तेदार बिक्रमजीत सिंह मजीठिया का नाम बार-बार आगे आ रहा है। हालाँकि अपने असर-रसूख के दम पर वह आज भी आज़ाद घूम रहा है। ऐसे में कोई भी यह समझ सकता है कि चुनावी पार्टियों द्वारा छेड़ी गयी नशा विरोधी मुहिम शुद्ध नाटक है और कुछ भी नहीं।

जब हम नशों की बीमारी के ख़ात्मे की बात करते हैं तो सबसे पहले यह सवाल उठता है कि क्या ऐसा सम्भव है? सवाल है कि नौजवान नशों के चंगुल में फँसते ही क्यों हैं? पहली बात, नशाख़ोरी इस पूँजीवादी समाज में कभी ख़त्म नहीं हो सकती। इसका पहला कारण तो यह है कि नशों का कारोबार आज एक विश्वव्यापी कारोबार है। बेहिसाब मुनाफ़े का साधन होने के चलते मुनाफ़े पर टिकी इस व्यवस्था में, पूँजीपतियों के मैनेजर की भूमिका निभाने वाली सरकारें कभी नहीं चाहेंगी कि यह मुनाफ़े वाला कारोबार बन्द हो। दूसरा, पूँजीवादी समाज लगातार बड़े स्तर पर ऐसी आबादी पैदा करता रहता है जो अपने जीवन से पूरी तरह निराश होती है। इस निराशा का कारण व्यवस्था द्वारा समाज में व्यापक स्तर पर फैलायी गयी बेगानगी, मानवद्रोही सांस्कृति होती है। इसके अलावा लगातार बढ़ती बेरोज़गारी इस मुनाफ़ाख़ोर व्यवस्था का अन्तर्निहित अंग है। इसके चलते बहुत से नौजवान भविष्य में बेहतर जीवन की कोई उम्मीद की किरण न देखकर निराशा के माहौल में डूबकर नशों की तरफ़ बढ़ जाते हैं। तीसरा, समाज का बड़ा हिस्सा यानी मेहनतकश जनता आज अपनी रोज़ाना की ज़रूरतें पूरा करने से वंचित है। सारा दिन कारख़ानों-खेतों में काम करने के बाद भी उनकी आमदनी इतनी कम होती है कि तीन वक़्त की रोटी भी ढंग से नसीब नहीं होती। सारा दिन हाड़-तोड़ मेहनत करने के बाद अपने शरीर को चलता रखने के लिए उसे नशे की खुराक देनी ज़रूरी हो जाती है क्योंकि काम करने लायक कम से कम ऊर्जा भी उन्हें नहीं मिलती। चौथी बात, आम आबादी का एक हिस्सा, ख़ासकर नौजवान, तरह-तरह के नशों की खुमारी में ही पड़ा रहे, यह बात इस व्यवस्था के भी हित में है। इसलिए नशों का समूचा कारोबार इस व्यवस्था के भीतर ख़त्म हो पाना बिलकुल भी सम्भव नहीं है। न ही इतिहास में इसका कोई उदाहरण मिलता है कि कभी पूँजीवादी व्यवस्था में ऐसा हुआ हो। केवल समाजवाद के दौर में रूस और चीन जैसे देशों में नशाख़ोरी और इसके सामाजिक कारणों को ख़त्म कर दिया गया था। इसके बारे में जो लोग अधिक जानना चाहते हैं उन्हें अमेरिकी पत्रकार की प्रसिद्ध किताब 'पाप और विज्ञान' ज़रूर पढ़नी चाहिए।

लेकिन इसका यह भी अर्थ नहीं है कि समाज में प्रगतिशील शक्तियों को आज इसका विरोध करना ही छोड़ देना चाहिए। पूँजीवादी व्यवस्था में नशों का पूरी तरह ख़ात्मा भले ही सम्भव नहीं है लेकिन नशों के ख़िलाफ़ व्यापक प्रचार और जुझारू आन्दोलन से हुक्मरानों पर दबाव बनाकर व जनता को जागरूक करके कुछ हद तक इस समस्या से निजात पायी जा सकती है। लेकिन इसके लिए हमें चुनावी पार्टियों के झूठे प्रचार से कोई उम्मीद नहीं पालनी चाहिए। इनका कुल मकसद ही लोगों की आँखों में धूल झोंकना है। समाज में काम करने वाली प्रगतिशील ताक़तों को लगातार हुक्मरानों की इन जनविरोधी करतूतों का पर्दाफ़ाश करना चाहिए। हमें हर स्तर पर लोगों को नशे जैसी बीमारियाँ पैदा करने वाली इस पूँजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ जागरूक करना चाहिए। हमें लोगों को बताना होगा कि नशे जैसी भयानक समस्या का ख़ात्मा मुकम्मल तौर पर किया जाना सम्भव है लेकिन ऐसा मुनाफ़े पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था में नहीं होगा बल्कि समाजवादी व्यवस्था में होगा जो मुनाफ़े पर टिकी नहीं होगी, जिसका मकसद लोगों का कल्याण होगा।

– छिन्दरपाल

हरियाणा के रोहतक में हुई एक और "निर्भया" के साथ दरिन्दगी

रोज़-रोज़ होने वाले स्त्री विरोधी अपराधों की कड़ी में एक और नया मामला जुड़ गया है और यह ख़बर छपने तक देश में कहीं न कहीं और भी स्त्री विरोधी अपराधों को अंजाम दिया जा चुका होगा। मानवता को शर्मसार करने वाला यह मामला हरियाणा के ज़िला रोहतक का है। एक नेपाली मूल की मानसिक रूप से अस्वस्थ युवती अपनी बहन के पास इलाज करवाने के लिए आयी थी। इनकी बहन का परिवार पूरी तरह से मज़दूर पृष्ठभूमि का है। इनकी बहन घरों में काम करती हैं व बहनोई एक फ़ैक्टरी मज़दूर हैं। रोहतक शहर से इस युवती का 1 फ़रवरी को अपहरण किया गया। युवती का शव 4 फ़रवरी को रोहतक-हिसार रोड स्थित बहु अकबरपुर गाँव की ड्रेन के पास नोची हुई और नग्न अवस्था में पाया गया। पोस्टमार्टम की रिपोर्ट के मुताबिक़ युवती को, पाश्विकता से सामूहिक बलात्कार करके बेरहमी से मार दिया गया। पुलिस प्रशासन ने मामले को बिल्कुल भी गम्भीरता से नहीं लिया। हर बार की तरह प्रशासन कान में रूई-तेल डालकर सोता रहा। बकौल युवती की बहन पुलिस के ढीले-ढाले रुख़ का एक कारण उनका ग़रीब होना भी है। रोहतक में हुए विरोध प्रदर्शन के बाद ही पुलिस हरकत में आ सकी। इस तरह का जघन्य अपराध कोई पहला नहीं है। अभी पिछले दिनों ही पंजाब के लुधियाना में भी एक बहादुर लड़की शहनाज़ को गुण्डा गिरोह ने बलात्कार के बाद आवाज़ उठाने पर ज़िन्दा जला दिया था। दिल्ली के निर्भया काण्ड के समय पूरे देश में हुए ज़बरदस्त विरोध के बाद भी न जाने कितनी निर्भयाओं के साथ बलात्कार हुए, और बहुतों को मौत की नींद सुला दिया गया।

हरियाणा में तो पिछले दिनों ही बलात्कार की एक के बाद एक घटनाएँ हमारे सामने आयी थीं। लगता है हरियाणा की जनता इन स्त्री विरोधी अपराधों को अपना भाग्य मान चुकी है, यही कारण है कि ऐसे मामले हो जाने पर कुछ विरोध प्रदर्शन कर लिये जाते हैं, मोमबत्ती जुलूस निकाल लिये जाते हैं, ज्ञापनपत्र देने का दौर-दौरा चलता है, लेकिन उसके बाद सबकुछ पहले की तरह ही बदस्तूर जारी रहता है। बसों-ट्रेनों में आये दिन छेड़छाड़ की घटनाएँ होती हैं, बलात्कार की घटनाएँ भी आये दिन अख़बारों की सुर्ख़ियाँ बनती हैं। और समाज के पाखण्ड की हद देखिये कि एक तरफ़ तो 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता' का ढोल पीटा जाता है, "प्राचीन संस्कृति" का यशोगान होता है लेकिन दूसरी तरफ़ स्त्रियों के साथ बर्बरता के सबसे घृणित मामले यहीं देखने को मिलते हैं। स्त्री विरोधी मानसिकता का ही नतीजा है कि हरियाणा में कन्या भ्रूण हत्या होती है और लड़के-लड़कियों की लैंगिक असमानता बहुत ज़्यादा है। हिन्दू धर्म के तमाम ठेकेदार आये दिन अपनी दिमाग़ी गन्दगी और स्त्रियों को दोयम दर्जे का नागरिक मानने की अपनी मंशा का प्रदर्शन; कपड़ों, रहन-सहन और बाहर निकलने को लेकर बेहूदा बयानबाज़ियाँ करके करते रहते हैं लेकिन तमाम स्त्री विरोधी अपराधों के ख़िलाफ़ बेशर्म चुप्पी साध लेते हैं। यह हमारे समाज का दोगलापन ही है कि पीड़ा भोगने वालों को ही दोषी करार दे दिया जाता है और नृशंसता के कर्ता-धर्ता अपराधी आमतौर पर बेख़ौफ़ होकर घूमते हैं। अभी ज़्यादा दिन नहीं हुए, जब हरियाणा के मौजूदा मुख्यमन्त्री मनोहर लाल खट्टर फ़रमा रहे थे कि लड़कियों और महिलाओं को कपड़े पहनने की आज़ादी लेनी है तो सड़कों पर निर्वस्त्र क्यों नहीं घूमती!

मानवता को झकझोरने वाले ये जघन्य स्त्री विरोधी अपराध हमारे समाज में होते ही क्यों हैं? और क्या यह महज़ क़ानून और व्यवस्था का मसला है? पहली बात तो यह है ही कि स्त्री विरोधी अपराधों पर तमाम सरकारों को घेरा जाना चाहिए। सरकार का काम ही क्या होता है? यदि वह स्त्रियों को सुरक्षा नहीं दे सकती, जनता को उसके बुनियादी हक़ नहीं दे सकती तो उसका औचित्य ही क्या है? सरकार एक तरफ़ तो बेटी बचाओ की नौटंकी करती है लेकिन दूसरी तरफ़ महिला सुरक्षा के लिए क़त्तई गम्भीर नहीं है। दूसरी बात इन स्त्री विरोधी अपराधों का मूल कारण मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था में है। आज के समाज में स्त्रियों को महज़ एक बिकाऊ माल बनाकर रख दिया है जिसे कोई भी

(पेज 12 पर जारी)

ऐसे तैयार की जा रही है मज़दूर बस्तियों में साम्प्रदायिक तनाव की ज़मीन!

उत्तर-पश्चिमी दिल्ली की मज़दूर बस्तियों में संघ परिवार बड़े ही सुनियोजित ढंग से साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण और तनाव को गहरा बनाने के लिए काम कर रहा है। हाल के एक वर्ष के दौरान मज़दूर इलाक़ों के लगभग सभी पार्कों में संघ की शाखाएँ लगने लगी हैं और झुग्गी बस्तियों के मुस्लिम परिवारों को निशाना बनाकर साम्प्रदायिक ज़हर फैलाने का काम लगातार जारी है। इन हिन्दुत्ववादियों के गिरोहों में छोटे ठेकेदारों, दलालों, दुकानदारों, मकान मालिकों के परिवारों के युवाओं के अतिरिक्त मज़दूर बस्तियों के लम्पट और अपराधी तत्व भी शामिल होते हैं।

इस इलाक़े के बवाना, नरेला, होलम्बी आदि बस्तियों में यमुना पुश्ता और भीतरी दिल्ली से विस्थापित जिन मज़दूरों को बसाया गया है, उनमें बंगाल (और बिहार के भी) के मुस्लिम मज़दूरों की भारी संख्या है। कुछ बांग्लादेशी प्रवासी भी हैं। हिन्दुत्ववादी प्राय: इसी आबादी को अपना निशाना बनाते हैं। लुम्पेन तत्वों तथा अपराध और नशे के कारोबार का घटाटोप हिन्दू बहुल और मुस्लिम बहुल - दोनों ही इलाक़ों में है। इस माहौल का फ़ायदा सस्ती श्रम शक्ति ख़रीदने वाले ठेकेदारों और कम्पनियों को, हफ़्तावसूली करने वाली पुलिस को और धार्मिक कटरपन्थी फासिस्ट गिरोहों को - तीनों को ही होता है।

पिछले दिनों साम्प्रदायिक तनाव भड़काने का खेल बवाना में खेला गया। भाजपा का आकलन था कि नियन्त्रित और सीमित साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण का ही दिल्ली चुनावों में लाभ होगा, अत: मामले को एक सीमा से आगे नहीं बढ़ने दिया गया, अन्यथा स्थिति विस्फोटक होने की पूरी सम्भावना थी।

अब ऐसी ही भूमिका मेट्रो विहार, होलम्बी खुर्द के मज़दूर इलाक़े में भी तैयार की जा रही है। सूखे पत्तों की ढेरी तैयार है, जलती तीली जब चाहें फेंकी जा सकती है।

2001 में दिल्ली के कई इलाक़ों से उजाड़े गये मज़दूरों को लाकर मेट्रो विहार, होलम्बी खुर्द में बसाया गया। यहाँ के मुस्लिम मज़दूर परिवारों ने उसी समय प्रशासन से मस्जिद और क़ब्रिस्तान (निकटतम क़ब्रिस्तान लगभग 8 कि.मी. दूर है) के लिए जगह की माँग की थी और सितम्बर, 2001 में प्रशासन को सूचित करके ख़ाली पड़ी ज़मीन पर अस्थायी तौर पर एक मस्जिद बना ली थी। 2002 में सामने की ख़ाली ज़मीन पर कुछ लोगों ने एक मन्दिर बना लिया। इसके पीछे संघ कार्यकर्ताओं का मुख्य उकसावा था। सम्भावित विवाद से बचने के लिए मुस्लिम परिवारों ने प्रशासन से कई बार यह माँग की कि मस्जिद और क़ब्रिस्तान के अतिरिक्त मन्दिर और श्मसान के लिए भी जगह अलॉट कर दी जाये। 14 वर्षों तक लगातार सोलह विभागों को पत्र लिखने और चक्कर लगाने के बाद भी प्रशासन ने कोई क़दम नहीं उठाया।

2014 के उत्तरार्द्ध में, मोदी सरकार के सत्तासीन होने के बाद, इस इलाक़े में साम्प्रदायिक ताक़तों की ज़मीनी सरगर्मियाँ तेज़ी से बढ़ीं। 10 सितम्बदर 2014 के अस्थायी मस्जिद और अस्थायी मन्दिर के बीच की ख़ाली जगह पर कुछ असामाजिक तत्वों ने मिट्टी पाटना शुरू कर दिया। आशंकित लोगों द्वारा पुलिस बुलायी जाने के बाद उन्होंने पुलिस को यह आश्वासन दिया कि उनकी मंशा क़ब्ज़ा करने की नहीं है। बहरहाल, उस जगह का इस्तेमाल ऐसे तत्व नशा और जूए के अड्डे के रूप में करने लगे जो मस्जिद में आने वाले लोगों के लिए एक समस्या थी। फिर 27 दिसम्बर, 2014 को उस ख़ाली पड़ी जगह को बाँस-बल्लियों से उन्हीं तत्वों द्वारा घेर दिया गया। पी.सी.आर. और स्थानीय पुलिस आने के बाद दिखावटी तौर पर उन्हें मना करके चली गयी, लेकिन बाड़ेबन्दी का काम रुका नहीं।

यह एक जीता-जागता उदाहरण है कि किस तरह साम्प्रदायिक तनाव का मुद्दा पैदा करने में प्रशासन साम्प्रदायिक तत्वों का मददगार बनता है। साम्प्रदायिक तनाव के विस्फोटों के समय जो लुम्पेन तत्व फासिस्टों के भाड़े के लठैत की भूमिका निभाते हैं, उनकी नर्सरी भी इन्हीं मज़दूर बस्तियों में फल-फूल रही है। अपराध, जूआ, नशा, अवैध शराब और वेश्यावृत्ति के जितने अड्डे बवाना, बादली, शाहाबाद डेयरी, होलम्बी जैसी मज़दूर बस्तियों में चलते हैं, वे पुलिस की मिलीभगत से चलते हैं। सदाचार और नैतिकता की दुहाई देने वाले संघ परिवार की शाखा लगाने वाले लोग स्थानीय गुण्डों-लम्पटों के हितों पर चोट करने वाला कोई मुद्दा नहीं उठाते, उल्टे ऐसे तत्वों के साथ सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध चलाते हैं। वर्तमान विधानसभा चुनावों के समय ऐसे अधिकांश तत्वों को भगवापट्टी बाँधों, भाजपा की टोपी लगाये भाजपा उम्मीदवार का प्रचार करते देखा जा सकता है।

इस क्षेत्र में 'बिगुल मज़दूर दस्ता' और 'नौजवान भारत सभा' के कार्यकर्ताओं की लुम्पेन फासिस्ट तत्वों से अतीत में कई बार टकराव हो चुके हैं। पिछले सप्ताह से साम्प्रदायिक फासीवाद के विरुद्ध पूरे इलाक़े में चलाये जा रहे 'इंकलाबी जनएकजुटता अभियान' से नरेला, बवाना, होलम्बी, शाहाबाद डेयरी, बादली आदि मज़दूर इलाक़ों के हिन्दुत्ववादी फासिस्टों और लम्पट गिरोहों में काफ़ी बौखलाहट है। लेकिन मज़दूर आबादी के व्यापक जनसमर्थन के चलते वे खुले टकराव में नहीं आ रहे हैं। हाँ, अन्दरूनी षड्यन्त्रकारी गतिविधियाँ और दुष्प्रचार मुहिम चलाते रहना तो उनकी फ़ितरत है। उससे भला वे क्यों बाज़ आयेंगे!

-कविता कृष्णपल्लवी

मनरेगा परियोजना में मोदी सरकार द्वारा की जा रही कटौतियाँ – कॉरपोरेट जगत की तिजोरियाँ भरने के लिए जनहित योजनाओं की बलि चढ़ाने की शुरुआत

(पेज 1 से आगे)

लिए दिये जाने वाले धन को बढ़ा दिया है और मज़दूरी के लिए आवण्टित धन को कम कर दिया है जिससे इस परियोजना को लागू करने वाले सरकारी अफ़सरों, बिचौलियों, कॉण्ट्रैक्टरों, ग्राम-प्रधानों और ठेकेदारों को खुला भ्रष्टाचार करने का बढ़ावा मिलेगा और काम करने वाले मज़दूरों को नुक़सान होगा, यह तय है।

वर्तमान मोदी सरकार इस परियोजना को बन्द करने की दिशा में लगातार प्रयास कर रही हैं, जो आँकड़ों से स्पष्ट है। लेकिन ज़मीनी हक़ीक़त देखें तो बेरोज़गारों की संख्या लगातार बढ़ रही है, जिनको किसी और विकल्प के अभाव में इस परियोजना से थोड़ी सहूलियत मिल जाती है। 2009 से 2014 तक इस परियोजना के तहत जारी किये गये कुल जॉब-कार्डों की संख्या 11.25 करोड़ से बढ़कर 13.0 करोड़ हो गयी है। परियोजना के पिछले सालों के कामकाज पर नज़र डालें तो साल 2008-09 में करीब 23.10 अरब प्रति व्यक्ति कार्यदिवस रोज़गार मिला जिससे, एक सीमा तक ही सही, हर साल लगभग पाँच करोड़ परिवारों को फ़ायदा हुआ। रोज़गार पाने वाले लोगों में करीब आधे प्रति व्यक्ति कार्य दिवस महिलाओं को मिले। इस परियोजना से स्त्रियों और पुरुषों के न्यूनतम मज़दूरी के अन्तर में कुछ कमी आयी है और रोज़गार के लिए ग्रामीण इलाक़ों से मज़दूरों का पलायन थोड़ा कम हुआ था।

परियोजना में आवण्टित धन को कम करने के पीछे सरकार की तरफ़ से यह तर्क दिया जा रहा है कि सरकार के पास पैसों की कमी है। सरकार के इस झूठ को समझने के लिए हमें कुछ आँकड़ों पर नज़र डालनी होगी। मौजूदा वित्तीय वर्ष में मनरेगा के लिए दिया जाने वाला बजट 33,000 करोड़ रुपये है जो देश की जीडीपी के सिर्फ़ 0.3 फ़ीसदी के बराबर है। जबकि उद्योग जगत को दी जाने वाली करों की छूट जीडीपी के तकरीबन तीन फ़ीसदीके बराबर है जो मनरगा के लिए ज़रूरी फण्ड की तुलना में 10 गुना अधिक है। उद्योगपतियों को टैक्स में छूट देने से देश के सिर्फ 0.7 फ़ीसदी मज़दूरों के लिए रोज़गार पैदा होगा, जबकि मनरेगा के तहत 25 फ़ीसदी ग्रामीण परिवारों को रोज़गार मिलता है। केवल सोने और हीरे के कारोबार में लगी कम्पनियों को मनरेगा पर आने वाले ख़र्च की तुलना में दोगुने, यानी 65,000 करोड़ रुपये के बराबर कर छूट दी गयी है। अभी हाल ही में मोबाइल सर्विस देने वाली एक कम्पनी वोडाफ़ोन को कर में 3,200 करोड़ की छूट दे दी गयी है। इससे इतना तो स्पष्ट है कि सरकार जनता के पैसों को उद्योगपतियों के मुनाफ़े और उनकी विलासिता के लिए लुटाते समय पैसों की कमी के बारे में नहीं सोचती लेकिन जहाँ जनता के लिए कोई परियोजना लागू करने की बात होती है वहाँ लोगों को गुमराह करने के लिए धन की कमी का बहाना बना दिया जाता है।

लोगों को रोज़गार देने में असमर्थ लुंज-पुंज और पिछड़ी भारतीय पूँजीवादी अर्थव्यवस्था जनता को सम्माननीय जीवन स्तर देने में असमर्थ है, लेकिन सरकार जनता के लिए चलायी जा रही परियोजनाओं में भी कटौती करके पूँजीपतियों की तिजोरियाँ भरने के लिए प्रतिबद्ध है। गुजरात मॉडल से देश के विकास का नारा लगाने वाली वर्तमान सरकार चाहती है कि देशी-विदेशी पूँजी को मुनाफ़ा कमाने की खुली छूट देकर "विकास" को बढ़ावा दिया जाये और जनता के लिए चलायी जा रही कल्याणकारी परियोजनाओं में ख़र्च को घटाकर कम से कम कर दिया जाये। इस समय योजना आयोग की जगह लेने वाले नीति आयोग में जिन दो अर्थशास्त्रियों की नियुक्ति की गयी वो दोनों ही सामाजिक सुरक्षा वाले अन्य कार्यक्रमों समेत मनरेगा के मुखर आलोचक रहे हैं। स्पष्ट है कि यदि व्यापक स्तर पर मज़दूरों ने जनता के अधिकारों में की जा रही इन कटौतियों के ख़िलाफ़ आवाज़ न उठायी तो मनरेगा जैसी जन-कल्याणकारी परियोजनाओं को भी कार्पोरेट के मुनाफ़े की भेंट चढ़ाकर बन्द कर दिया जायेगा। आज जिस तरह पूरे देश में रोज़गार की अनिश्चितता और बेरोज़गारी बढ़ रही है और ग्रामीण इलाक़ों से उजड़-उजड़ कर अनेक गरीब परिवार शहरों तथा महानगरों में काम की तलाश में आ रहे हैं जिनकी आबादी महानगरों के आस-पास मज़दूर बस्तियों के रूप में बस रही है, ऐसे समय में मनरेगा परियोजना में की जा रही कटौतियों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने के साथ ज़रूरी है कि शहरों में रहने वाले करोड़ों ग़रीब मज़दूर परिवारों के लिए रोज़गार गारण्टी की माँग भी उठायी जाये।

– राजकुमार

मनरेगा के तहत	2009-10	2010-11	2011-12	2012-13	2013-14	2014-15'
कुल जारी किये गये जॉब-कार्ड	11.25 करोड़	11.98 करोड़	12.50 करोड़	13.06 करोड़	13.15 करोड़	13.00 करोड़
परिवारों को मिला रोज़गार	5.26 करोड़	5.49 करोड़	5.06 करोड़	4.99 करोड़	2.79 करोड़	3.60 करोड़
प्रति-व्यक्ति-दिन प्रति परिवार	54	47	43	46	46	34

'दिसम्बर 2014 तक, (स्रोत - मनरेगा रिपोर्ट, in BusinessStandard, 3 फ़रवरी 2015)

सन्दर्भ

• http://www.business-standard.com/ article/economy-policy/ future-tense-as-mgnrega-turns- 10-115020300023_1.html
• http://www.thehindu.com/news/ national/karnataka/sangha -opposes-union-governments- attempts-to-dilute-mgnrega /article6837000.ece • http://www.thehindu.com/business/Industry/centre- not-to-appeal-bombay- high-court-order-in-vodafone-tax-case/ article6830825.ece • http://www.thehindu.com /news/national/telangana /minister-expresses-dissatisfaction/article6830286.ece
• http://www.livemint.com/Home-Page/FH9LwwbO7cs4S WP64mXl0J/Tracing-MGNREGAs-decline.html
• http://www.bbc.co.uk/hindi /india/2015/02/150206_ mnrega_bjp_government_rns
• http://www.bbc.co.uk/hindi /india/2015/02/150202_ mnrega_analysis_by_reetika_khera_vr

सेज़ के बहाने देश की सम्पदा को दोनो हाथों से लूटकर अपनी तिज़ोरी भर रहे हैं मालिक!

कोलम्बस के बाद ज़मीन की लूट का सबसे बड़ा गोरखधन्धा बन गया है सेज़!

भारत सरकार ने जब सेज़ (स्पेशल इकोनॉमिक ज़ोन, SEZ) की घोषणा की थी तब पूँजीवादी मीडिया में इस बात का बहुत ढिंढोरा पीटा गया था कि इससे 'देश का विकास' होगा पर अब सच्चाई सामने आ चुकी है। कैग की रिपोर्ट से यह साफ़ हो गया है कि सेज़ देश की ग्रामीण जनता की ज़मीन को 'विकास' के नाम पर लूटकर मालिकों की तिज़ोरी भरने का एक हथियार है। कैग की रिपोर्ट ने साफ़ कर दिया है कि सेज़ के नाम पर मुनाफ़ाख़ोर मालिकों ने जनता की ज़मीनें हड़पीं और उन्हें प्रोपर्टी और अन्य धन्धों में लगाकर जमकर मुनाफ़ा कूटा। इसके अलावा मालिकों ने प्रत्यक्ष और परोक्ष करों में 83,000 हज़ार करोड़ की टैक्स छूट का फ़ायदा उठाया जिसमें सेण्ट्रल एक्साइज़, वैट, स्टाम्प ड्यूटी आदि के आँकड़े शामिल नहीं हैं। सेज़ जब खोले गये थे तो कहा गया था कि इससे रोज़गार मिलेगा, विनिर्माण क्षेत्र में पूँजी निवेश बढ़ेगा, व निर्यात बढ़ेगा जिससे 'देश का विकास' होगा, पर कैग की रिपोर्ट ने साफ़ कर दिया है कि सेज़ से केवल मालिकों का विकास हुआ है और जनता की सम्पदा को 'विकास' के नाम पर मालिकों ने जमकर लूटा है। कैग ने स्पष्ट कहा है कि सेज़ अपने रोज़गार, निवेश, और निर्यात के लक्ष्यों को पूरा करना तो दूर अपने घोषित लक्ष्यों के आस-पास तक नहीं पहुँच सका और सेज़ की योजना पूरी तरह से फ़्लॉप साबित हो गयी है।

कैग ने 150 पन्नों की अपनी रिपोर्ट में सेज़ के ऑडिट में कई बातों का खुलासा किया है। कैग ने कहा कि सेज़ डेवलपर्स (यानी कि आज के आधुनिक लुटेरे कोलम्बस) की कोशिश रहती है कि सेज़ के नाम पर बडी ज़मीन ले ली जाये, पर उसमें से कुछ ही को सेज़ के नाम पर अधिसूचित किया जाये व सेज़ की ज़मीन का अपनी मनमर्ज़ी से भू-उपयोग बदलकर उसे प्रोपर्टी के धन्धे से लेकर अन्य व्यावसायिक कार्यों में लगाकर ज़्यादा मुनाफ़ा कमा लिया जाये। रिपोर्ट में रिलायंस, एस्सार, श्रासिटी, डीएलएफ़ और यूनिटेक जैसे डेवलपर्स पर आरोप लगाया गया है कि इन्होंने सेज़ के नाम पर ज़मीन लेकर उसे आवासीय से लेकर अन्य व्यावसायिक औद्योगिक कार्यों में लगा दिया। रिपोर्ट कहती है कि सेज़ के विकास के लिए अधिसूचित 45,635.63 हेक्टेयर में से वास्तविक कार्य मात्र 28,488.49 हेक्टेयर या अधिसूचित भूमि के मात्र 62 फ़ीसदी में किया गया और बचे हुए 33 फ़ीसदी पर काम शुरू ही नहीं किया गया। नौ मामलों में प्रतिबन्धित भूमि जैसेकि रक्षा विभाग, जंगल या सिंचाई वाली भूमि को सुप्रीम कोर्ट के आदेश व सेज़ के नियमों का ही उल्लंघन करते हुए सेज़ बनाने के लिए दे दिया गया। इसमें भी अधिसूचित भूमि में से कुछ को मूल्य वृद्धि से लाभ प्राप्त करने के लिए बाद में डेवेलपर्स द्वारा अपनी मर्ज़ी से रद्द करके उसका उपयोग बदल दिया गया। मुकेश अम्बानी ने नवी मुम्बई सेज़ में 1250 हेक्टेयर में द्रोणगिरी में सेज़ बनाने के लिए 2006 में यूपीए सरकार से अनुमति ली पर अब तक वहाँ एक भी इकाई नहीं बनी है, पर फिर भी उसे लगातार ग़लत तरीक़े से विस्तार (extension) दिया गया। रिपोर्ट के मुताबिक़, कई समूहों ने सेज़ के नाम पर सरकार से ज़मीन लेकर उसे बाद में ऊँचे दामों पर बेच दिया और 6 राज्यों में करीब 39,245.56 हेक्टेयर ज़मीन सेज़ के नाम पर निकाली गयी, लेकिन इसमें से करीब 5,402.22 हेक्टेयर ज़मीन का व्यावसायिक इस्तेमाल कर लिया गया। आन्ध्र प्रदेश में एक डेवलपर को 14 सेज़ बनाने के अनुमोदन दे दिये गये, पर उसने काम शुरू ही नहीं किया और ना ही सरकार ने इसकी जाँच की। कैग ने दावा किया है कि कई जगह "सार्वजनिक मक़सद" (public purpose) के नाम पर ज़मीन ली गयी, जो ग़लत है। कैग के मुताबिक़ आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और पश्चिम बंगाल में सेज़ की ज़मीन का धड़ल्ले से दुरुपयोग हुआ है। ग्यारह समूहों ने ये ज़मीन गिरवी रखकर 6,309 करोड़ रुपये उठाये और इनमें से 3 डेवेलपर्स ने 2,211 करोड़ रुपये दूसरे कामों पर ख़र्च किये और वहाँ कोई सेज़-सम्बन्धित आर्थिक विकास कार्य नहीं हो रहा है जबकि शुरुआत में सेज़ के लिए एनओसी जारी करते समय कहा गया था कि सेज़ की ज़मीन गिरवी रखी ही नहीं जा सकती, पर बाद में वाणिज्य मन्त्रालय ने ऐसा करने दिया। कैग ने कहा कि 392 अधिसूचित क्षेत्रों में से केवल 152 में ही काम हो रहा है और सेज़ का अर्थव्यवस्था के विकास में कोई ख़ास योगदान नहीं है।

ज़मीन के दुरुपयोग से अलग इन कम्पनियों ने 2006 से 2013 के बीच 83,000 करोड़ से ज़्यादा की टैक्स छूट का फ़ायदा भी उठाया जिसमें सेण्ट्रल एक्साइज, सर्विस टैक्स, वैट, स्टाम्प ड्यूटी आदि शामिल ही नहीं हैं, क्योंकि भारत सरकार के पास ऐसी कोई निगरानी प्रणाली नहीं है जो सेज़ में करों में मिलने वाली छूट की निगरानी करती हो। ज़ाहिर-सी बात है कि सेण्ट्रल एक्साइज, सर्विस टैक्स, स्टाम्प ड्यूटी आदि की छूट को मिलाकर टैक्स छूट का आँकड़ा और बढ़ जायेगा! पहले भी 2007 में संसदीय स्थाई समिति की ओर से की गयी जाँच में बताया गया था कि 2004 से 2010 के बीच 1.75 लाख करोड़ की टैक्स छूट सेज़ को दी गयी थी। इसके अलावा कैग कहती है कि सेज़ में ग़लत तरीक़े से 1,150 करोड़ की छूट दी गयी।

कैग ने स्पष्ट कहा है कि सेज़ अपने रोज़गार, निवेश, और निर्यात के लक्ष्यों को पूरा करने में बुरी तरह से विफल रहा। हम एक-एक करके इन आँकड़ों को लेते हैं। ये आँकड़े मुख्यत: वर्ष 2006 से लेकर वर्ष 2013 तक के हैं यानी कि पिछले 7-8 सालों के।

सबसे पहले रोज़गार को लेते हैं। सेज़ में रोज़गार सृजित करने के जो सब्ज़बाग मालिकों ने दिखाये थे, वे सब फ़र्जीबाड़ा था जनता की आँखों में धूल झोंकने का! रिपोर्ट कहती है कि 12 राज्यों में फैले सेज़ में कुल मिलाकर 39,17,677 लोगों को रोज़गार मिलना था पर मिला केवल 2,84,785 लोगों को यानी कि अनुमानित लक्ष्य से 92.73 प्रतिशत कम!

मक्क़ार मालिकों और उनके भोंपू पूँजीवादी मीडिया ने जनता को मुंगेरीलाल के हसीन सपने दिखाये कि सेज़ से निवेश बढ़ेगा और 'देश का विकास' होगा और टटपूँजिया मध्यवर्ग ने इन सपनों को हाथों-हाथ ख़रीदा, पर सच्चाई इसके ठीक उलट निकली। कुल 79 डेवलपर्स या सेज़ यूनिट मालिकों को 1,94,662.52 का निवेश करना था पर किया केवल 80,176.25 यानी कि लक्ष्य से 58.81 प्रतिशत कम! कैग ने यह भी कहा कि सेज़ की छूट का फ़ायदा आईटी-आईटीईएस (IT-ITES) कम्पनियाँ उठा रही हैं जोकि सेज़ का 56.64 प्रतिशत है व बहुउत्पाद विनिर्माण क्षेत्र का हिस्सा केवल 9.6 प्रतिशत है, जबकि सेज़ को बहुउत्पाद विनिर्माण क्षेत्र को बढ़ावा देने के लिए ही बनाया गया था!

यही निर्यात के मामले में हुआ। कुल निर्यात का लक्ष्य था 3,95,547.43 पर हासिल हुआ केवल 1,00,579.70 यानी कि लक्ष्य से 74.57 प्रतिशत कम!

यानी कि संक्षेप में कहें तो सेज़ के घोषित 100 प्रतिशत के लक्ष्य में से रोज़गार मिला केवल 7.27 प्रतिशत लोगों को, निवेश हुआ केवल 41.19 प्रतिशत, निर्यात हुआ केवल 25.43 प्रतिशत, और सेज़ में व बहुउत्पाद विनिर्माण क्षेत्र का हिस्सा बना केवल 9.6! यानी कि खोदा पहाड़, निकली चुहिया!

थोड़े में कहा जाये तो सेज़ से लेकर एक्सप्रेस वे, टाउनशिप, और औद्योगिक क्षेत्र आदि के बहाने मालिकों ने धड़ल्ले से ज़मीनें हड़पीं और जमकर अरबों की करचोरी की। ऐसी परियोजनाओं का कोई लाभ जनता को नहीं मिला। ये परियोजनाएँ 'देश के विकास' के लिए नहीं बल्कि मालिकों के विकास के लिए शुरू की गयी थीं। पूँजीवादी जनतन्त्र में यही होता है। सरकारें पूँजीपति वर्ग की मात्र मैनेजिंग कमेटियाँ होती हैं जिनका काम होता है मालिक वर्ग की सेवा करना और जब मालिकों द्वारा जनता के धन की लूट बहुत बढ़ जाती है तब उस लूट को थोड़ा नियन्त्रित करने की व्यर्थ कोशिश करना। यही काम पहले मनमोहन सिंह की सरकार कर रही थी और अब मोदी की सरकार कर रही है। अम्बानी, अडानी जैसे धनपशु पहले भी जनता को लूट रहे थे, अब भी जनता को लूट रहे हैं। अब जनता को सोचना है कि कैसे इस लूट के निज़ाम को उखाड़ फेंककर एक समतामूलक समाज बनाया जाये।

– तर्कवागीश

पेज 9 से आगे)

ख़रीद सकता है और नोच-खसोट सकता है। सांसद-विधानसभाओं से लेकर पुलिस थानों तक में बलात्कार और स्त्री विरोधी अपराधियों के दर्शन किये जा सकते हैं। इसके अलावा समाज के पोर-पोर में पैठी पितृसत्ता की मानसिकता भी इस तरह के अपराधों के लिए ज़िम्मेदार है। यह मानसिकता स्त्रियों को केवल भोग की वस्तु और बच्चा पैदा करने की मशीन समझती है। पितृसत्ता स्त्रियों को चूल्हे-चौखट में क़ैद करके रखना चाहती है।

आज हम स्त्रियों पर होने वाले बर्बर हमलों को रोकने की उम्मीद सरकारों से, जिनमें ख़ुद बलात्कार के दोषी शामिल हों, उस पुलिस व्यवस्था से जहाँ थानों में भी बलात्कार हो जाते हों और उस न्याय व्यवस्था से जहाँ न्याय अमीरों की बपौती बन गया हो, कत्तई नहीं कर सकते। बेशक हम इन्हें बार-बार घेरेंगे लेकिन स्त्री सुरक्षा का ठेका इनके भरोसे छोड़कर चैन से बैठना आज अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने जैसा होगा। स्त्री उत्पीड़न के तमाम रूपों के ख़िलाफ़ जगह-जगह संगठन खड़े किये जायें, चौकसी दस्ते बनाये जायें जिनमें स्त्रियाँ भी आगे बढ़कर भागीदारी करें। स्त्री-पुरुष असमानता, पितृसत्तात्मक पिछड़ेपन और हर किस्म के दमन-उत्पीड़न के ख़िलाफ़ आज बड़ी जन-गोलबन्दी बेहद ज़रूरी है। दूसरा स्त्री मुक्ति के सवाल को व्यवस्था परिवर्तन की लड़ाई के साथ जोड़ना बेहद ज़रूरी है। पूँजीवाद के रहते स्त्री मुक्ति के संघर्ष को परवान नहीं चढ़या जा सकता और न ही समाज की आधी आबादी की भागीदारी के बिना ऐसे मानवद्रोही समाज को नष्ट किया जा सकता है जिसने हर चीज़ को ख़रीदे-बेचे जाने वाले माल में तब्दील कर दिया है।

हरियाणा के रोहतक में हुई एक और "निर्भया" के साथ दरिन्दगी

रोहतक निर्भया काण्ड और स्त्री उत्पीड़न के ख़िलाफ़ जन-अभियान व प्रदर्शन

रोहतक निर्भया काण्ड की भर्त्सना करते हुए विभिन्न जन संगठनों ने विरोध प्रदर्शन भी किये। इसी कड़ी में रोहतक में नौजवान भारत सभा ने दिशा छात्र संगठन और स्त्री मुक्ति लीग के साथ मिलकर देश और प्रदेश में हो रहे स्त्री उत्पीड़न की घटनाओं के ख़िलाफ़ जन-जागरूकता अभियान चलाकर विरोध प्रदर्शन किया और ज्ञापन सौंपा। नौजवान भारत सभा के रमेश खटकड़ ने बताया कि पुलिस-प्रशासन की भूमिका आज अग्नि शमन विभाग से ज़्यादा नहीं रह गयी है। छेड़छाड़ और बलात्कार की दर्दनाक घटनाएँ हो जाने के बाद ही पुलिस-प्रशासन सकते में आता है। यदि इस देश की सरकारें स्त्रियों को सुरक्षा नहीं दे सकती, रोज़गार और शिक्षा नहीं दे सकती तो उनका काम क्या है? दूसरी बात आज समाज को पीछे ले जाने वाली ताक़तें भी समाज में सक्रिय हैं जो लड़कियों को घर की चारदीवारी में ही क़ैद रखना चाहती हैं। इनके ख़िलाफ़ भी हमें एकजुट होना पड़ेगा, इनसे लोहा लेना पड़ेगा। दिशा छात्र संगठन की आदिति ने कहा कि आज छात्रों की भी बड़ी ज़िम्मेदारी बनती है कि वे स्त्रियों के हक़ों, उनके जनवादी अधिकारों के लिए आवाज़ उठायें। आज नौजवान लड़कियों को भी आगे आने की ज़रूरत है। व्यापक पर्चा वितरण व नुक्कड़ सभाएँ करते हुए जन-जागरूकता अभियान शहर के बस अड्डे, रेलवे स्टेशन, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय के कैम्पस, जाट कॉलेज, सर छोटूराम पोलिटेकनिक, प. नेकीराम कॉलेज, सी.आर. कॉलेज आदि में चलाया गया था। 13 फ़रवरी को प्रदर्शन का आयोजन किया गया। सभा को सम्बोधित करते हुए स्त्री मुक्ति लीग की शिवानी ने कहा कि आज हमें न केवल अपने जनवादी अधिकारों के लिए लड़ना पड़ेगा बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था से भी टकराना पड़ेगा जिसने स्त्रियों को एक बिकाऊ माल में तब्दील कर दिया है। हमें अपने अधिकारों के लिए तात्कालिक रूप से सत्ता-व्यवस्था पर तो दबाव बनाना ही पड़ेगा लेकिन स्त्री मुक्ति के अपने संघर्ष को व्यवस्था परिवर्तन के साथ भी जोड़ना पड़ेगा। स्त्री उत्पीड़न के ख़ात्मे पर विभिन्न वक्ताओं ने अपनी बातें रखीं। प्रदर्शन के बाद डी.सी. को ज्ञापन सौंपा गया जिसमें रोहतक निर्भया के मामले में फ़ास्ट ट्रैक कोर्ट, दोषियों को बिना शर्त मृत्युदण्ड देने, पीड़िता के परिवार को उचित मुआवज़ा देने और तमाम स्त्री-विरोधी अपराधों को तुरन्त संज्ञान में लिया जाये आदि माँगें शामिल थीं। उक्त विरोध प्रदर्शन में करीब 100 लोग शामिल थे जिनमें छात्र-छात्राएँ और आम नागरिक शामिल थे।

कुछ सीधी-सादी समाजवादी सच्चाइयाँ

• पॉल लफ़ार्ग

मज़दूर : लेकिन अगर कोई मालिक नहीं होगा तो मुझे काम कौन देगा?

समाजवादी : यह सवाल मुझसे अक्सर ही पूछा जाता है; चलो इसका पता लगायें। काम के लिए तीन चीज़ों की ज़रूरत पड़ती है : एक वर्कशॉप, मशीनें, और कच्चा माल।

मज़दूर : ठीक है।

समाजवादी : वर्कशॉप कौन बनाता है?

मज़दूर : मिस्त्री।

समाजवादी : मशीनें कौन बनाता है?

मज़दूर : इंजीनियर।

समाजवादी : कपास कौन उगाता है जिससे तुम कपड़े बुनते हो, भेड़ों से ऊन कौन निकालता है जिसे तुम्हारी पत्नी कातती है, खदानों से खनिज कौन निकालता है जिसे तुम्हारा बेटा भट्ठी में ढालता है?

मज़दूर : किसान, चरवाहे, खदान मज़दूर – मेरे जैसे मज़दूर।

समाजवादी : इस तरह, तुम, तुम्हारी पत्नी, और तुम्हारा बेटा केवल इसीलिए काम कर सकते हैं क्योंकि तमाम अन्य मज़दूरों ने तुम्हें भवन, मशीन और कच्चे माल की आपूर्ति कर रखी है।

मज़दूर : लेकिन बात यह है; मैं कपास और करघे के बिना सूती कपड़ा नहीं बुन सकता।

समाजवादी : ठीक है, तो तुम्हें काम देने वाला पूँजीपति अथवा मालिक नहीं है, बल्कि मिस्त्री, इंजीनियर, किसान है। क्या तुम्हें पता है कि तुम्हारे मालिक ने तुम्हारे काम के लिए आवश्यक उन सभी चीज़ों को कैसे हासिल किया?

मज़दूर : उसने उन्हें ख़रीदा।

समाजवादी : उन्हें रुपये किसने दिये?

मज़दूर : मुझे क्या पता। उसके पिता ने उसके लिए थोड़े पैसे छोड़े होंगे; आज वह करोड़पति है।

समाजवादी : क्या उसने करोड़ों रुपये अपनी मशीनों पर काम करके और कपड़े की बुनाई करके कमाये?

मज़दूर : ठीक ऐसे तो नहीं; हमसे काम करवाकर उसने करोड़ो रुपये अर्जित किये।

समाजवादी : तो वह बिना कोई काम किये धनी बन गया; क़िस्मत बनाने का यही एकमात्र तरीक़ा है। जो काम करते हैं उन्हें मात्र उतना मिलता है जिससे वे जीवित रह सकें। लेकिन, मुझे बताओ, अगर तुम और तुम्हारे सहकर्मी मज़दूर काम नहीं करें, तो क्या तुम्हारे मालिक की मशीनों में जंग नहीं लग जायेगा, और उसके कपास कीड़े-मकोड़े चट नहीं कर जायेंगे?

मज़दूर : यदि हम काम नहीं करें तो वर्कशॉप की सभी चीज़ें जर्जर और बरबाद हो जायेंगी।

समाजवादी : इस तरह, काम करके तुम अपने श्रम के लिए आवश्यक मशीनों और कच्चे माल की रक्षा कर रहे हो।

मज़दूर : यह सच है; मैंने इस बारे में कभी नहीं सोचा।

समाजवादी : क्या तुम्हारा मालिक अपने वर्कशॉप में होने वाले काम की देखभाल करता है?

मज़दूर : ज़्यादा नहीं; वह हमारे कार्यस्थल पर हमें देखने के लिए रोज़ आता है, लेकिन अपने हाथ गन्दे होने की डर से वह उन्हें अपनी जेबों में रखता है। कताई मिल में, जहाँ मेरी पत्नी और बेटी काम करती हैं, मालिक कभी नहीं आता, हालाँकि वहाँ चार मालिक हैं; ऐसी ही स्थिति फ़ाउण्ड्री में भी है, जहाँ मेरा बेटा काम करता है; मालिक वहाँ कभी नहीं देखे जाते न ही उन्हें कोई जानता है; यहाँ तक कि वर्कशॉप की तीन चौथाई आबादी ने उनकी परछाई तक नहीं देखी जब कि काम की मालिक कम्पनी का यह एक सीमित उत्तरदायित्व है। मान लीजिये आप और मैं बचत करके पाँच सौ फ्रैंक इकट्ठा कर लेते हैं, हम एक शेयर ख़रीद सकते हैं, और मालिकों में से एक बन जाते हैं, चाहे कभी कार्यस्थल पर क़दम भी नहीं रखा हो, अथवा वहाँ जाते भी नहीं हों।

समाजवादी : तब, शेयरधारक मालिकों की इस जगह पर, और तुम्हारे एक मालिक की तुम्हारे वर्कशॉप पर काम को निर्देशित और उसकी निगरानी कौन करता है, यह देखते हुए कि वहाँ कभी मालिक नहीं आता, अथवा इतनी आज़ादी है इसका कोई असर नहीं पड़ता?

मज़दूर : मैनेजर और फ़ोरमैन।

समाजवादी : लेकिन यदि मज़दूरों ने वर्कशॉप बनायें, मशीनें बनायीं, और कच्चे माल का उत्पादन किया; यदि मज़दूर ही मशीनों को चलाते हैं, और मैनेजर तथा फ़ोरमैन काम को निर्देशित करते हैं, तो फिर मालिक क्या करता है?

मज़दूर : कुछ नहीं, बस बैठे-ठाले मौज करता है।

समाजवादी : यदि यहाँ से चाँद तक रेल जाती, हम मालिकों को वहाँ भेज सकते थे, बिना वापसी के टिकट के, और तुम्हारी कपड़े की बुनाई, तुम्हारी पत्नी का चरखा, और तुम्हारे बेटे का ढलाई का काम पहले की तरह चलता रहेगा... तुम्हें पता है कि पिछले साल तुम्हारे मालिक को कितना मुनाफ़ा हुआ था?

मज़दूर : हमने गणना की है कि उसे एक लाख फ़्रैंक मिला होगा।

समाजवादी : उसने पुरुषों, महिलाओं और बच्चों को मिलाकर कुल कितने मज़दूरों को रोज़गार दे रखा है?

मज़दूर : एक सौ।

समाजवादी : उन्हें कितनी पगार मिलती है?

मज़दूर : औसतन, लगभग एक हज़ार फ़्रैंक, मैनेजरों और फ़ोरमैनों के वेतन को जोड़कर।

समाजवादी : इस प्रकार काम में लगे सौ कर्मचारी कुल मिलाकर पगार के रूप में एक लाख फ़्रैंक पाते हैं, जो मात्र इतना है कि वे भूख से नहीं मरें, जबकि तुम्हारा मालिक बिना कुछ किये एक लाख फ़्रैंक अपनी जेब में रख लेता है। ये दो लाख फ़्रैंक आते कहाँ से हैं?

मज़दूर : आसमान से तो नहीं; मैंने कभी भी फ़्रैंक की बारिश होते नहीं देखा।

समाजवादी : अपने काम में लगे वे मज़दूर ही हैं जिन्होंने उन्हें पगार के रूप में मिले एक लाख फ़्रैंक पैदा किया, और, इसके अलावा, उस मालिक के एक लाख फ़्रैंक के मुनाफ़े को भी पैदा किया, जिसने नयी मशीनें ख़रीदने के लिए उनके एक हिस्से को रोज़गार दे रखा है।

मज़दूर : इस बात से इनकार नहीं है।

समाजवादी : इस प्रकार मज़दूर ही वो रुपये पैदा करते हैं जो मालिक उन्हें काम करने के लिए नयी मशीनें ख़रीदने में लगाता है; उत्पादन को निर्देशित करने वाले मैनेजर और फ़ोरमैन, आपकी तरह ही वैतनिक गुलाम होते हैं; तब, मालिक कहाँ आता है? वह किस काम के लिए अच्छा है?

मज़दूर : श्रम के शोषण के लिए।

समाजवादी : हम कह सकते हैं, श्रमिकों को लूटने के लिए; यह स्पष्ट और ज़्यादा सटीक है।

(द सोशलिस्ट, सितम्बर 1903 में प्रकाशित)

अनुवाद : **संजय श्रीवास्तव**

बराक ओबामा की भारत यात्रा

अमेरिका व भारत की "मित्रता" के असल मायने

अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा की तीन दिनों की भारत यात्रा की पिछले दिनों देशी-विदेशी मीडिया में काफ़ी चर्चाएँ रही हैं। पूँजीवादी मीडिया में अमेरिका-भारत के आपसी सम्बन्धों के वास्तविक मकसद, ओबामा की भारत यात्रा के असल मायनों की व्याख्या की लगभग ग़ायब रही है। पूँजीवादी मीडिया से यह उम्मीद भी नहीं की जा सकती।

इस समय पूरी दुनिया में आर्थिक संकट के काले बादल छाये हुए हैं जो दिन-ब-दिन सघन से सघन होते जा रहे हैं। दुनिया की दो बड़ी अर्थव्यवस्थाएँ, अमेरिका और भारत भी इस संकट में बुरी तरह घिरी हुई हैं। आर्थिक संकट से निकलने के लिए अमेरिकी साम्राज्यवाद को अपनी दैत्याकार पूँजी के लिए बड़े बाज़ारों की ज़रूरत है। इस मामले में भारत उसके लिए बेहद महत्वपूर्ण है। अमेरिकी पूँजीपति भारत में अधिक से अधिक पैर पसारना चाहते हैं ताकि आर्थिक मन्दी के चलते घुटती जा रही साँस से कुछ राहत मिले। इधर भारतीय पूँजीवाद को आर्थिक संकट से निपटने के लिए बड़े पैमाने पर विदेशी पूँजी निवेश की ज़रूरत है। विदेशों से व्यापार के लिए इसे डॉलरों की ज़रूरत है। भारत में पूँजीवाद के तेज़ विकास के लिए भारतीय हुक्मरान आधारभूत ढाँचे के निर्माण में तेज़ी लाना चाहते हैं। भारतीय पूँजीपति वर्ग यहाँ उन्नत तकनोलॉजी, ऐशो-आराम का साजो-सामान आदि और बड़े स्तर पर चाहता है। इस सबके लिए इसे भारत में विदेशी पूँजी निवेश की ज़रूरत है। मोदी सरकार ने लम्बे समय से लटके हुए परमाणु समझौते को अंजाम तक पहुँचाने का दावा किया है। जब कांग्रेस के नेतृत्व वाली संप्रग सरकार यह समझौता कर रही थी तो भाजपा ने इसके विरोध का ड्रामा किया था और कहा था कि उसकी सरकार आने पर यह समझौता रद्द कर दिया जायेगा। जैसीकि उम्मीद थी, अमेरिका से परमाणु समझौता पूरा कर लेने का दावा करके भाजपा ने अपना थूका चाट लिया है।

अमेरिका और भारत दोनों चीन की बढ़ती जा रही आर्थिक और राजनीतिक ताक़त से बहुत अधिक फ़िक्रमन्द हैं। चीन दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन चुका है। आर्थिक ताक़त बढ़ने के साथ ही राजनीतिक-सामरिक ताक़त भी बढ़ने की स्थितियाँ बन जाती हैं। चीन की ओर से दी जा रही चुनौती का मुकाबला करने के लिए अमेरिका भारत को गले लगाना चाहता है। अमेरिकी साम्राज्यवाद अपने सबसे बड़े साम्राज्यवादी शत्रु रूस से निपटने के लिए भी भारत का साथ चाहता है। वह रूस, चीन और भारत की नज़दीकियों से काफ़ी चिन्तित है। अमेरिका का प्रस्ताव है कि अमेरिका, भारत, जापान व आस्ट्रेलिया आधारित सैनिक गठबन्धन कायम किया जाये।

एशिया क्षेत्र में चीन के बढ़ते जा रहे प्रभाव से भारतीय शासक भी काफ़ी चिन्तित हैं। इस क्षेत्र में भारतीय शासक अपना दबदबा कायम रखना चाहते हैं। साथ ही, चीन से भारत की लम्बी सरहद भी लगती है। इसलिए चीन का मुक़ाबला करने के लिए अमेरिकी साम्राज्यवाद से गलबहियाँ करना भारतीय शासकों की भी ज़रूरत है। दक्षिण चीन सागर में चीन द्वारा अपने पड़ोसियों से झगड़ा बढ़ाने के विरुद्ध प्रस्ताव पर मोदी ने ओबामा के साथ हस्ताक्षर भी किये हैं।

जनता के श्रम और प्राकृतिक स्रोत-संसाधनों की लूट से अधिक से अधिक मुनाफ़ा कमाने के लिए, इस लूट में शामिल अपने विरोधियों को हाशिये पर धकेलने के लिए, दिन-ब-दिन गहरे से गहरे होते जा रहे विश्वव्यापी आर्थिक संकट से निकलने के लिए बाज़ारों का प्रसार करना ही अमेरिका और भारत की बढ़ती जा रही "मित्रता" का वास्तविक तत्व है। ओबामा की भारत यात्रा को इसी प्रसंग में देखा जाना चाहिए।

ओबामा ने अपनी तीन दिनों की यात्रा के अन्तिम दिन एक भाषण में भारतीय संविधान की धारा 25 का हवाला देते हुए कहा था कि भारत में धार्मिक आज़ादी है। उसने कहा कि भारत विभिन्न धर्मों के लोगों में भाईचारा कायम रखकर ही विकास कर सकता है। ओबामा के इस भाषण पर पूँजीवादी मीडिया ने ख़ूब तालियाँ बजायी हैं। बहुत से अख़बारों ने सम्पादकीय लिखकर ओबामा के भाषण की तारीफ़ के पुल बाँधे हैं। लेकिन ओबामा द्वारा धर्मनिरपेक्षता, साम्प्रदायिक सौहार्द क़ायम रखने, भाईचारा बनाये रखने की बातें ढोंग के सिवा और कुछ नहीं हैं। भारतीय संविधान की धारा 25 की खुलेआम धज्जियाँ उड़ायी जाती रही हैं। इसका ओबामा ने ज़िक्र तक नहीं किया। भारत में धार्मिक आज़ादी और जनवाद की सबसे बड़ी दुश्मन ताक़त संघ परिवार की भाजपा सरकार से ओबामा गलबहियाँ ले रहा है। अगर ओबामा सचमुच में सच्चा होता तो हिन्दू कट्टरपन्थी ताक़तों सहित अन्य सभी धार्मिक ताक़तों का नाम लेकर उनके ख़िलाफ़ बोलता। गुजरात में मुसलमानों के 2002 में हुए क़त्लेआम के कमाण्डर नरेन्द्र मोदी को अमेरिका जाने के लिए वीज़ा दिये जाने पर रोक थी। ओबामा सरकार ने यह रोक मोदी के प्रधानमन्त्री बनने के बाद हटा ली। क्या प्रधानमन्त्री बनकर नरेन्द्र मोदी दूध के धुले हो गये?

सच तो यह है कि भारतीय जनता की लूट और बढ़ाने के लिए, जनता के आन्दोलनों को कुचलने के लिए, लोगों को आपस में लड़ाने के लिए साम्प्रदायिकता का बढ़ना अमेरिकी साम्राज्यवाद के प्रत्यक्ष हित में है। अमेरिका ख़ुद दुनियाभर में साम्प्रदायिकता फैला रहा है। एक तरफ़ इराक़, अफ़ग़ानिस्तान जैसे देशों में अमेरिकी फ़ौजें भेजकर अमेरिका मुसलमानों का क़त्लेआम कर रहा है, फ़िलिस्तीन में बच्चों सहित हज़ारों लोगों को मारने वाले इज़रायली शासकों को शह दे रहा है और दूसरी तरफ़ इस्लामिक स्टेट (आईएस) जैसे वहशी जुनूनियों को भी पैदा करता रहा है। अमेरिकी साम्राज्यवादी हुक्मरान, जिनका इस समय कमाण्डर बराक ओबामा है, दुनिया में जनवाद के सबसे बड़े हत्यारे हैं। इसलिए ओबामा का भाषण मक्कारी के सिवा और कुछ नहीं। अमेरिकी साम्राज्यवाद का यह नुमाइन्दा अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों के नीचे अपने लुटेरे हितों को छिपाने की कोशिश कर रहा था जिनकी पूर्ति के लिए वह भारत में यहाँ की सरकार व पूँजीपतियों से मिलने आया था।

– लखविन्दर

देश की 50 फ़ीसदी युवा आबादी के सामने क्या है राजनीतिक-आर्थिक विकल्प – मुनाफ़ाखोरी के सामने बाध्यता या सबको रोज़गार देने में समर्थ नियोजित अर्थव्यवस्था के लिए लड़ना?

काम की तलाश कर रहे करोड़ों बेरोज़गार युवा, कारखानों में खटने वाले मज़दूर, खेती से उजड़कर शहरों में आने वाले या आत्महत्या करने के लिए मजबूर किसान, और रोज़गार के सपने पाले करोड़ों छात्र लम्बे समय से अपने हालात बदलने का इन्तज़ार कर रहे हैं। इन्तज़ार का यह सिलसिला आज़ादी मिलने के बाद से आज तक जारी है। आज भारत की 50 फ़ीसदी आबादी 25 साल से कम उम्र की है और देश के श्रम बाजार में हर साल एक करोड़ नये मज़दूरों की बढ़ोत्तरी हो रही है। लेकिन देश की पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था इस श्रम शक्ति को रोज़गार देने में असमर्थ है जिससे आने वाले समय में बेरोज़गारों की संख्या में गुणात्मक वृद्धि होने वाली है। वैसे भी वर्तमान में देश के 93 फ़ीसदी से ज़्यादातर मज़दूर ठेके के तहत अनियमित रोज़गार पर बिना किसी संवैधानिक श्रम अधिकार के बदतर परिस्थितियों में काम करके अपने दिन गुज़ार रहे हैं।

सीएसआईआर के एक सर्वेक्षण के अनुसार 2011-12 से 2017-18 तक, 8 सालों में लगभग 8.5 करोड़, यानी हर साल 1 करोड़ नये मज़दूरों की श्रम बाज़ार में बढ़ोत्तरी होगी। 2011-12 में 23.1 करोड़ मज़दूर दिहाड़ी करने, ठेला लगाने, या खेतों में काम करने जैसे अनियमित रोज़गार में लगे हैं और 24 करोड़ उद्योगो में काम करने वाले मज़दूर हैं। यदि जीडीपी विकास दर 6.5 प्रतिशत रहती है तो आनेवाले 8 सालों में देश के उद्योगो में रोज़गार के मात्र 3.8 करोड़ नये मौक़े पैदा होंगे, जो पिछले 8 सालों की तुलना में 1.4 करोड़ (20 प्रतिशत) कम हैं। 2004-05 से 2011-12 के बीच आँकड़ों के अध्ययन से पता चलता है कि इन 8 सालों में देशी-विदेशी निवेश के चलते उद्योग क्षेत्र में 5.2 करोड़ नयी नौकरियाँ पैदा हुईं, जबकि 3.7 करोड़ लोग अपने वर्तमान कामों से उजड़ गये। इसका अर्थ है कि 2004-05 से 2011-12 तक वास्तव में सिर्फ़ 1.5 करोड़ नये रोज़गार के अवसर पैदा हुए, यानी हर साल सिर्फ़ 18 लाख।

इस सच्चाई के बावजूद यदि किसी पूँजीवादी अर्थशास्त्री की तरह कल्पना करें कि आने वाले 8 सालों में खेती और "स्व-रोज़गार" में लगा एक भी मज़दूर अपने काम से नहीं उजड़ेगा तब भी 8.5 करोड़ नये श्रमिकों में से 3.8 करोड़ को ही रोज़गार मिल सकेगा और 5.7 करोड़ तब भी बेरोज़गार ही रह जायेंगे। तथ्यों की रोशनी में सच्चाई को देखें तो 2012-13 में खेती और "स्व-रोज़गार" से जुड़े कामों से में होने वाला कुल उत्पादन देश की जीडीपी का सिर्फ़ 13.7 प्रतिशत है, जिस पर देश के लगभग 50 फ़ीसदी मज़दूरों की आजीविका निर्भर है, जो देशी-विदेशी पूँजी निवेश के विस्तार के साथ लगातार उजड़ रहे हैं (Agriculture's share in GDP declines to 13.7% in 2012-13, Economic Times, 30 August 2013) (Agriculture Sector, 4 Dec, 2014, Ministry of External Affairs, Govt. of India) इस परिस्थिति में यदि आने वाले समय में उजड़ने वाले मज़दूरों का सिलसिला पिछले सालों के बराबर भी रहेगा तो 2011-12 से 2017-18 तक कम से कम 3.7 करोड़ मज़दूर अपने वर्तमान कामों से उजड़ जायेंगे। ऐसी स्थिति में शहरों की ओर उद्योगों में काम की तलाश में आने आने वाले कुल मज़दूरों की संख्या 12.2 करोड़ होगी – 8.5 करोड़ नये और 3.7 करोड़ "स्व-रोज़गार" या खेती से उजड़े हुए – जिनमें से सिर्फ़ 3.8 करोड़ को रोज़गार मिल सकेगा और बाक़ी 8.4 करोड़ मज़दूर ऐसे होंगे जिनके पास कोई काम नहीं होगा। यानी 8.5 करोड़ नये मज़दूर बाज़ार में आयेंगे और सिर्फ़ 10 लाख नये लोगों को उद्योगों में काम मिलेगा, बाक़ी बचे हुए मज़दूर अपने जीवन-यापन के लिए रेड़ी लगाने, दिहाड़ी करने या सब्ज़ियाँ बेचने जैसे काम करने के लिए मजबूर होंगे और चाहे वे कितने भी कुशल और योग्य हों।

पूँजीवादी विकास के साथ आम जनता के लिए रोज़गार के अवसर लगातार कम हो रहे हैं जिसे आँकड़ों के आधार पर सरलता से समझा जा सकता है। 2011-12 में भारत में 10 लाख मूल्य का उत्पादन करने के लिए मज़दूरों की संख्या 2004-05 की तुलना में आधी हो चुकी है। वर्तमान में आईटी सेक्टर में 1 से दो लोग 10 लाख मूल्य सालाना का उत्पादन करते हैं और यह संख्या लगातार व्युत्क्रमानुपाती ढंग से बढ़ रही जिसके कारण अभी हाल ही में खड़े हुए आई.टी. सेक्टर में भी रोज़गार के अवसर कम हुए हैं और कुशल मज़दूरों की आवश्यकता घटी है। मुनाफ़ा केन्द्रित उत्पादन के तहत ऑटोमेशन और टेक्नोलाजी के विकास के साथ मज़दूरों की माँग लगातार कम हो रही है जिससे आम मेहनतकश जनता के लिए रोज़गार के विकल्प कम हो रहे हैं। हर नई टेक्नोलॉजी और आटोमेशन की नयी खोज के साथ कम श्रम शक्ति का इस्तेमाल करके बड़ा अतिरिक्त मूल्य, यानी बड़ा मुनाफ़ा, पैदा करना भी आसान हो रहा है। एक ओर पूँजीपति वर्ग की सम्पत्ति में बढ़ोत्तरी और शेयर बाज़ार में तेज़ी की दर बढ़ती जायेगी, तो दूसरी ओर श्रम के बाज़ार में अतिरिक्त-श्रम के रूप में बेरोज़गार मज़दूरों की संख्या बढ़ती जायेगी, जिससे श्रम-शक्ति का मूल्य घटेगा और कार्यक्षेत्र में मज़दूरों का खुला शोषण, काम की बदतर परिस्थितियाँ और मज़दूर परिवारों की बर्बादी भी बढ़ती जायेगी। अपराध, नैतिक पतन, वेश्यावृत्ति, और लम्पट तबकों में भी बढ़ोत्तरी होगी। कुशल मज़दूरों की आवश्यकता घटने के साथ आने वाले समय में कई और क्षेत्रों में भी ठेकाकरण को बढ़ावा दिया जायेगा और बचे-खुचे मज़दूर अधिकार भी विकास की भेंट कर दिये जायेंगे। एक आँकड़े के अनुसार यदि पूँजीवादी लूट के बीच कामों से उजड़ने वाले मज़दूरों की संख्या और बेरोज़गारी की दर वर्तमान गति से बढ़ती रही तो 2016 तक दुनिया के सबसे अमीर 1 फ़ीसदी लोगों के पास बाक़ी बचे 99 फ़ीसदी लोगों की सम्पत्ति के बराबर सम्पत्ति हो जायेगी। (1 प्रतिशत के पास 99 प्रतिशत से ज़्यादा की सम्पत्ति, बीबीसी, 15 जनवरी 2015)

इन आँकड़ों से पूँजीवादी अर्थशास्त्रियों, जीडीपी या शेयर बाज़ार के विकास के लिए नारेबाज़ी करने वाले राजनेताओं का यह दावा कि पूँजी का निवेश (चाहे देशी हो या विदेशी) बढ़ने से रोज़गार बढ़ेगा कोरी बकवास सिद्ध हो जाता है। क्योंकि पूँजी निवेश जितने लोगों को रोज़गार देता है उससे अधिक उजड़ जाते हैं। आर्थिक उत्पादन की मौजूदा परजीवी मंज़िल में जहाँ किसी भी क़ीमत पर मुनाफ़ा कमाने की होड़ देशी-विदेशी पूँजीपतियों के बीच जारी है, यदि कोई यह कहता है कि पूँजी-निवेश को खुला बढ़ावा देने से जनता का विकास होगा तो उसे या तो समाज की ज़मीनी हक़ीक़त का अन्दाज़ नहीं है या वह जानबूझकर झूठ बोल रहा है। इन परिस्थितियों को नियन्त्रित करने के लिए वर्तमान पूँजीवादी सरकार ज़्यादा से ज़्यादा कुछ एनजीओ के माध्यम से या नरेगा जैसी कुछ कल्याणकारी योजनाएँ बनाकर समाज में बढ़ रहे असन्तोष और गुस्से को शान्त करने की कोशिश कर सकती है, उससे अधिक करने की क्षमता वर्तमान पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में नहीं है।

इण्डियन एक्सप्रेस की एक रिपोर्ट के अनुसार शहरी क्षेत्रों में 29 साल या उससे अधिक उम्र के हर चार ग्रेजुएट में से एक (16.3 प्रतिशत) बेरोज़गार हैं (Jobs report gloomy, prospects worst for graduates, shows all-India govt data , Indian Express, 1 April 2014) कुशल मज़दूरों की बात करें तो देश में हर साल 7 लाख इंजीनियर रोज़गार की तलाश में आ रहे हैं जिनमें से 2011-12 में 1.05 लाख को नौकरी मिल पाती है जबकि 2017-18 में यह संख्या घटकर 55,000 रह जायेगी और इंजीनियरिंग के डिग्रीधारकों की संख्या में बढ़ोत्तरी होगी (New IT Jobs Set to Fall by 50% in Four Years: Crisil, NDTV Profit,10 November, 2014)

वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था रोज़गार पैदा करने में असमर्थ है और समाज के लोगों पर भार बन चुकी है। बावजूद इसके, मज़दूरों के संगठित न होने के कारण दलाल मज़दूर यूनियनों की मौजूदगी में खुली मुनाफ़ाखोरी और प्रकृति की बर्बादी जारी है। व्यवस्था के परजीवी चरित्र को छुपाने और बेरोज़गार नौजवानों को गुमराह करने के लिए आज-कल प्रचार किया जा रहा है कि भारत में 47 फ़ीसदी ग्रेजुयेट (कुशल मज़दूर) रोज़गार देने के काबिल नहीं हैं, उन्हें और कुशल बनाने की ज़रूरत है (द हिन्दू, 26 जून, 2013)। इस प्रचार से दिग्भ्रमित होकर कई मज़दूर जिन्हें रोज़गार मिला होता है, वे अपने आपको दूसरों की तुलना में अधिक कुशल मान बैठते हैं। लेकिन यह सच्चाई ज़्यादा दिन छुपी नहीं रह सकती और आज-कल तो यह सामने आने भी लगी है। इसका एक उदाहरण अभी हल ही में टी.सी.एस. और नोकिया जैसी आई.टी. कम्पनियों द्वारा अनुभवी श्रमिकों को निकाले जाने की घटना से समझा जा सकता है।

ऊपर आँकड़ों से हम देख चुके हैं कि देश में बेरोज़गारी लगातार बढ़ रही है, पढ़े-लिखे ग्रेजुएट और तकनीकि शिक्षा प्राप्त लाखों युवा काम की तलाश में भटक रहे हैं और खेती-बाड़ी से उजड़ कर गाँव के करोड़ों नौजवान काम की तलाश में शहरों की ओर आ रहे हैं। समाज के दो विपरीत छोरों पर ग़ैर-बराबरी की खाई लगातार चौड़ी होती जा रही और विकल्पहीनता की स्थिति में देश की व्यापक मेहनतकश, किसान तथा नौजवान आबादी किसी विकल्प की तलाश कर रही है। पिछले दिनों देश और राज्यों में एक पार्टी की जगह दूसरी पार्टी की सरकारों का जीतना इस बात का उदाहरण है कि जनता बदलाव के लिए विकल्प ढूँढ़ रही है। आने वाले समय में श्रम और पूँजी का यह अन्तर्विरोध और तीक्ष्ण होगा, और समाज की व्यापक आबादी जो मेहनतकश मज़दूर-किसान और छात्र हैं, वे अपने अधिकारों के लिए, यानी रोज़गार और सम्माननीय काम की परिस्थितियों के लिए संगठित होकर सड़कों पर आयेंगे। इन परिस्थितियों में जनता को मूल मुद्दों से भटकाने के लिए हिन्दू-मुसलमान के नाम पर, दलित-ब्राह्मण के नाम पर या बिहारी-मराठी-बंगाली के नाम पर एक दूसरे के ख़िलाफ़ भड़काकर उन्हें आपस में बाँटने के प्रयास भी बढ़ते जायेंगे। वर्तमान में धार्मिक उन्माद को बढ़ाने और लोगों को आपस में लड़ाने के लिए उकसाने की कोशिशें लगातार हो रही हैं। हर मेहनत करने वाले इंसान को यह अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि आपस में लड़ाने वाली हर ताक़त विरोध करना ज़रूरी है ताकि देश की व्यापक आबादी अपनी वास्तविक माँगों के लिए संगठित होकर आगे आये जिससे समाज के हालात वास्तव में बदले जा सकें।

सन्दर्भ

1) Of Growth & Missed Opportunity, April 2014
2) CRISIL Inside, January 2014
3) Jobs report gloomy, prospects worst for graduates , Indian Express, 1 April 2014)
4) New IT Jobs Set to Fall by 50% in Four Years: Crisil, NDTV Profit, 10 November, 2014
5) Jobs report gloomy, prospects worst for graduates, shows all-India govt data, 1 April 2014
6) New IT Jobs Set to Fall by 50% in Four Years: Crisil, 10 November 2014
7) https://mospi.nic.in/Mospi_New/upload/nss_report_554_31jan14.pdf/
8) Employment and Unemployment Situation in India, NSSO, June 2011-June 2012
9) Nearly 47 per cent graduates in India unemployable, The Hindu, 26 June 2013

– राजकुमार

"ऐसा होता है सच्चाई का असर"

मक्सिम गोर्की के उपन्यास 'माँ' का एक अंश

एक रात खाना खाने के बाद पावेल ने खिड़की पर परदा डाला, दीवार पर टीन का लैम्प टाँगा और कोने में बैठकर पढ़ने लगा। माँ बर्तन धोकर रसोई से निकली और धीरे-धीरे उसके पास गयी। पावेल ने सिर उठाकर प्रश्नसूचक दृष्टि से माँ की ओर देखा।

"कुछ नहीं, पावेल, मैं तो ऐसे ही आ गयी थी," वह झटपट बोली और जल्दी से फिर रसोई में चली गयी। घबराहट के कारण उसकी भवें फड़क रही थीं। पर थोड़ी देर तक अपने विचारों से संघर्ष करने के बाद वह हाथ धोकर फिर पावेल के पास गयी।

"मैं तुमसे पूछना चाहती थी कि तुम हर वक्त यह क्या पढ़ते रहते हो?" उसने धीरे से पूछा।

पावेल ने किताब बन्द कर दी।

"अम्मा, बैठ जाओ।"

माँ जल्दी से सीधी तनकर बैठ गयी; वह कोई बहुत ही महत्वपूर्ण बात सुनने को तैयार थी।

पावेल माँ की तरफ देखे बिना बहुत धीमे और न जाने क्यों कठोर स्वर में बोला :

"मैं ग़ैरक़ानूनी किताबें पढ़ता हूँ। ये ग़ैरक़ानूनी इसलिए हैं कि इनमें मज़दूरों के बारे में सच्ची बातें लिखी हैं। ये चोरी से छापी जाती हैं और अगर मेरे पास पकड़ी गयीं तो मुझे जेल में बन्द कर दिया जायेगा... जेल में इसलिए कि मैं सच्चाई मालूम करना चाहता हूँ, समझीं?"

सहसा माँ को घुटन महसूस होने लगी। बहुत ग़ौर से उसने अपने बेटे को देखा और उसे वह पराया-सा लगा। उसकी आवाज़ भी पहले जैसी नहीं थी–अब वह ज़्यादा गहरी, ज़्यादा गम्भीर थी, उसमें ज़्यादा गूँज थी। वह अपनी बारीक मूँछों के नरम बालों को ऐंठने लगा और आँखें झुकाकर अजीब ढंग से कोने की तरफ ताकने लगा। माँ उसके बारे में चिन्तित हो उठी, और उसे उस पर तरस भी आ रहा था।

"पावेल, किसलिए तुम ऐसा करते हो?" माँ ने पूछा।

उसने सिर उठाकर माँ की तरफ देखा।

"क्योंकि मैं सच्चाई जानना चाहता हूँ," उसने बड़े शान्त भाव से उत्तर दिया।

उसका स्वर कोमल, पर दृढ़ था और उसकी आँखो में एक चमक थी। माँ ने समझ लिया कि उसके बेटे ने जन्म भर के लिए अपने आपको किसी गुप्त और भयानक काम के लिए अर्पित कर दिया है। वह परिस्थितियों को अनिवार्य मानकर स्वीकार कर लेने और किसी आपत्ति के बिना सब कुछ सह लेने की आदी हो चुकी थी। इसलिए वह धीरे-धीरे सिसकने लगी, पीड़ा और व्यथा के बोझ से उसका हृदय इतनी बुरी तरह दबा हुआ था कि वह कुछ भी कह न पायी।

"रोओ नहीं, माँ," पावेल ने कोमल और प्यार-भरे स्वर में कहा और माँ को ऐसा लगा मानो वह उससे विदा ले रहा हो। "ज़रा सोचो तो, कैसा जीवन है हम लोगों का! तुम चालीस बरस की हुईं, कुछ भी सुख देखा है तुमने अपने जीवन में? पिता हमेशा तुम्हें मारते थे ... अब मैं इस बात को समझने लगा हूँ कि वह अपने तमाम दु:ख-दर्दों, अपने जीवन के सभी कटु अनुभवों का बदला तुमसे लेते थे। कोई चीज़ लगातार उनके सीने पर बोझ की तरह रखी रहती थी पर वह नहीं जानते थे कि वह चीज़ क्या थी। तीस बरस तक उन्होंने यहाँ खून-पसीना एक किया... जब वह यहाँ काम करने लगे थे, तब इस फैक्टरी की सिर्फ दो इमारतें थीं और अब सात हैं।"

माँ बड़ी उत्सुकता के साथ किन्तु धड़कते दिल से उसकी बातें सुन रही थी। उसके बेटे की आँखों में बड़ी प्यारी चमक थी। मेज़ के कगर से अपना सीना सटाकर वह आगे झुका और माँ के आँसुओं से भीगे हुए चेहरे के पास होकर उसने सच्चाई के बारे में पहला भाषण दिया जिसका उसे अभी ज्ञान हुआ था। अपनी युवावस्था के पूरे जोश के साथ, उस विद्यार्थी के पूरे उत्साह के साथ जो अपने ज्ञान पर गर्व करता है, उसमें पूरी आस्था रखता है, वह उन चीजों की चर्चा कर रहा था जो उसके दिमाग में साफ थीं। वह अपनी माँ को समझाने के उद्देश्य से इतना नहीं, जितना अपने आपको परखने के लिए बोल रहा था। बीच में शब्दों के अभाव के कारण वह रुका और तब उस व्यथित चेहरे की ओर उसका ध्यान गया, जिस पर आँसुओं से धुँधलायी हुई दयालु आँखें धीमे-धीमे चमक रही थीं। वे भय और विस्मय के साथ उसे घूर रही थीं। उसे अपनी माँ पर तरस आया। वह फिर से बोलने लगा, मगर अब माँ और उसके जीवन के बारे में।

"तुम्हें कौन-सा सुख मिला है?" उसने पूछा। "कौन-सी मधुर स्मृतियाँ हैं तुम्हारे जीवन में?"

> **"हम मज़दूरों को पढ़ना चाहिए। हमें इस बात का पता लगाना चाहिए और इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि हमारी जिन्दगी में इतनी मुश्किलें क्यों हैं।"**

माँ ने सुना और बड़ी वेदना से अपना सिर हिला दिया। उसे एक विचित्र-सी नयी अनुभूति हो रही थी जिसमें हर्ष भी था और व्यथा भी, जो उसके टीसते हृदय को सहला रही थी। अपने जीवन के बारे में ऐसी बातें उसने पहली बार सुनी थीं और इन शब्दों ने एक बार फिर वही अस्पष्ट विचार जागृत कर दिये थे जिन्हें वह बहुत समय पहले भूल चुकी थी, इन बातों ने जीवन के प्रति असन्तोष की मरती हुई भावना में दुबारा जान डाल दी थी–उसकी युवावस्था के भूले हुए विचारों तथा भावनाओं को फिर सजीव कर दिया था। अपनी युवावस्था में उसने अपनी सहेलियों के साथ जीवन के बारे में बातें की थीं, उसने हर चीज के बारे में विस्तार के साथ बातें की थीं, पर उसकी सब सहेलियाँ–और वह खुद भी–केवल दुखों का रोना रोकर ही रह जाती थीं। कभी किसी ने यह स्पष्ट नहीं किया था कि उनके जीवन की कठिनाइयों का कारण क्या है। परन्तु अब उसका बेटा उसके सामने बैठा था और उसकी आँखें, उसका चेहरा और उसके शब्द जो भी व्यक्त कर रहे थे वह सभी कुछ माँ के हृदय को छू रहा था(उसका हृदय अपने इस बेटे के लिए गर्व से भर उठा, जो अपनी माँ के जीवन को इतनी अच्छी तरह समझता था, जो उसके दु:ख-दर्द का ज़िक्र कर रहा था, उस पर तरस खा रहा था।

माँओं पर कौन तरस खाता है?

वह इस बात को जानती थी। उसका बेटा औरतों के जीवन के बारे में जो कुछ कह रहा था एक चिर-परिचित कटु सत्य था और उसकी बातों ने उन मिश्रित भावनाओं को जन्म दिया जिनकी असाधारण कोमलता ने माँ के हृदय को द्रवित कर दिया।

"तो तुम करना क्या चाहते हो?" माँ ने उसकी बात काटकर पूछा।

"पहले खुद पढ़ूँगा और फिर दूसरों को पढ़ाऊँगा। हम मजदूरों को पढ़ना चाहिए। हमें इस बात का पता लगाना चाहिए और इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि हमारी ज़िन्दगी में इतनी मुश्किलें क्यों हैं।"

माँ को यह देखकर खुशी हुई कि उसके बेटे की हमेशा गम्भीर और कठोर रहने वाली नीली आँखों में इस समय कोमलता और मृदुलता चमक रही थी। यद्यपि माँ के गालों की झुर्रियों में अभी तक आँसुओं की बूँदें काँप रही थीं, पर उसके होंठों पर एक शान्त मुस्कराहट दौड़ गयी। उसके हृदय में एक द्वन्द्व मचा हुआ था। एक तरफ तो उसे अपने बेटे पर गर्व था कि वह जीवन की कटुताओं को इतनी अच्छी तरह समझता है और दूसरी तरफ उसे इस बात की चेतना भी थी कि अभी वह बिल्कुल जवान है, वह जैसी बातें कर रहा है वैसी कोई दूसरा नहीं करता और उसने केवल अपने बलबूते पर ही एक ऐसे जीवन के विरुद्ध संघर्ष करने का बीड़ा उठाया है जिसे बाकी सभी लोग, जिनमें वह खुद भी शामिल थी, अनिवार्य मानकर स्वीकार करते हैं। उसकी इच्छा हुई कि अपने बेटे से कहे, "मगर, मेरे लाल, तू अकेला क्या कर लेगा?"

पर वह ऐसा करने से झिझक गयी, क्योंकि मुग्ध होकर वह बेटे को जी भर देख लेना चाहती थी। उस बेटे को, जो सहसा ऐसे समझदार पर कुछ-कुछ अजनबी व्यक्ति के रूप में उसके सामने प्रकट हुआ था।

पावेल ने अपनी माँ के होंठों पर मुस्कराहट, उसके चेहरे पर चिन्तन का भाव, उसकी आँखों में प्यार देखा और उसे ऐसा लगा कि वह माँ को अपने सत्य का भान कराने में सफल हो गया है। अपनी वाणी की शक्ति में युवोचित गर्व ने उसका आत्म-विश्वास बढ़ा दिया। वह बड़े जोश से बोल रहा था, कभी मुस्कराता, कभी उसकी त्योरियाँ चढ़ जातीं और कभी उसका स्वर घृणा से भर उठता; उसके शब्दों में गूँजती कठोरता को सुनकर माँ को डर लगने लगता और वह सिर झुलाते हुए धीरे से पूछती

"पावेल, क्या ऐसा ही है?"

और वह दृढ़तापूर्वक उत्तर देता, "हाँ!" और वह उन लोगों के बारे में बताता जो जनता की भलाई के लिए उसमें सच्चाई के बीज बोते थे तथा इसी कारण जीवन के शत्रु हिंसक पशुओं की तरह उनके पीछे पड़ जाते थे, उन्हें जेलों में ठूँस देते थे, निर्वासित कर देते थे...

"मैं ऐसे लोगों को जानता हूँ!" उसने बड़े जोश के साथ कहा। "वे धरती के सच्चे लाल हैं!"

ऐसे लोगों के विचार से ही वह काँप गयी और एक बार फिर उसकी इच्छा अपने बेटे से पूछने की हुई कि क्या ऐसा ही है, पर उसे साहस नहीं हुआ। दम साधकर वह उससे उन लोगों के बारे में किस्से सुनती रही जिनकी बातें तो वह नहीं समझती थी पर जिन्होंने उसके बेटे को इतनी खतरनाक बातें कहना और सोचना सिखा दिया था। आखिरकार उसने अपने बेटे से कहा :

"सबेरा होने को आया। अब तुम थोड़ी देर सो लो।"

"हाँ, अभी," उसने कहा और फिर उसकी तरफ झुककर बोला, "मेरी बातें समझ गयीं न?"

"हाँ," उसने आह भरकर उत्तर दिया। एक बार फिर आँसुओं की धारा बह चली और सहसा वह ज़ोर से कह उठी, "तबाह हो जाओगे तुम!"

पावेल उठा, उसने कमरे का चक्कर लगाया और फिर बोला :

"अच्छा, तो अब तुम जान गयीं कि मैं क्या करता हूँ और कहाँ जाता हूँ," पावेल ने कहा, "मैंने तुम्हें सब कुछ बता दिया है। और अम्मा, अगर तुम मुझे प्यार करती हो, तो तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरी राह में बाधा न बनना।"

"ओह, मेरे लाल!" माँ ने रोते हुए कहा। "शायद... शायद अगर तुम मुझसे न बताते तो अच्छा होता।"

पावेल ने माँ का हाथ अपने हाथों में लेकर दबाया।

उसने जितने प्यार के साथ "अम्मा" कहा था और जिस नये तथा विचित्र ढंग से उसने आज पहली बार उसका हाथ दबाया था, उससे माँ का हृदय भर आया।

"मैं बाधा नहीं बनूँगी," उसने भाव-विह्वल होकर कहा। "मगर अपने को बचाये रखना, बचाये रखना!"

वह नहीं जानती थी कि उसे किस चीज से अपने को बचाना चाहिए, इसलिए उसने दु:खी होते हुए इतना जोड़ दिया :

"तुम दिन-ब-दिन दुबले होते जा रहे हो..."

वह अपने बेटे के लम्बे-चौड़े बलिष्ठ शरीर पर एक प्यार-भरी नज़र दौड़ाते हुए जल्दी-जल्दी और धीमी आवाज में बोली :

"तुम जो ठीक समझो करो–मैं तुम्हारी राह में बाधा नहीं बनूँगी। बस, इतनी ही प्रार्थना करती हूँ–इस बात का ध्यान रखना कि किससे बात कर रहे हो। तुम्हें लोगों के मामले में सतर्क रहना चाहिए। लोग एक-दूसरे से नफ़रत करते हैं। वे लालची हैं, एक-दूसरे से जलते हैं, जान-बूझकर दूसरों को नुकसान पहुँचाना चाहते हैं। जैसे ही तुम उन्हें उनकी वास्तविकता बताओगे, भला-बुरा कहोगे, वे जल-भुन जायेंगे और तुम्हें मिटा देंगे।"

पावेल दरवाज़े पर खड़ा हुआ उसके वे व्यथा-भरे शब्द सुनता रहा और जब वह अपनी बात ख़त्म कर चुकी तो मुस्कराकर बोला :

"तुम ठीक कहती हो–लोग बुरे हैं। लेकिन जैसे ही मुझे यह मालूम हुआ कि इस दुनिया में सच्चाई नाम की भी एक चीज़ है तो लोग भले मालूम होने लगे।"

वह फिर मुस्कराया और कहता गया :

"कारण मैं नहीं जानता, पर बचपन में मैं सबसे डरता था। ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया, सबसे नफ़रत करने लगा, कुछ से उनकी नीचता के लिए और कुछ से बस यों ही! लेकिन अब हर चीज़ बदली हुई मालूम होती है। शायद मुझे लोगों पर तरस आता है? समझ नहीं पाता, पर जब मुझे इस बात का आभास हुआ कि अपनी पशुता के लिये हमेशा खुद लोग ही दोषी नहीं होते थे तो मेरा हृदय कोमल हो उठा..."

वह बोलते-बोलते रुक गया मानो अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ सुन रहा हो और फिर उसने बड़े शान्त स्वर में विचारशीलता से कहा:

"ऐसा होता है सच्चाई का असर।"

"हे भगवान! ख़तरनाक परिवर्तन हो गया है तुममें," माँ ने कनखियों से उसे देखते हुए आह भरकर कहा।

जब वह सो गया, तो माँ अपने बिस्तर से उठकर दबे पाँव उसके पास गयी। पावेल सीधा लेटा हुआ था और सफ़ेद तकिये की पृष्ठभूमि पर उसके साँवले चेहरे की गम्भीर तथा कठोर रूप-रेखा स्पष्ट उभरी हुई थी। नंगे पैर और रात की पोशाक पहने हुए माँ सीने पर दोनों हाथ रखे उसके पास खड़ी थी–मूक होंठ हिल रहे थे और उसके गालों पर आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें ढलक रही थीं।

फिर पहले की तरह ही उनका जीवन बीतने लगा, दोनों चुप-चुप रहते, एक-दूसरे से दूर, फिर भी बहुत निकट।

RNI No. UPHIN/2010/36551
डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2014-2016
प्रेषित डाकघर : आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि : दिनांक 20 प्रत्येक माह

दिल्ली विधान सभा चुनावों के नतीजों के बाद : केजरीवाल की राजनीति और भविष्य की सम्भावनाओं पर कुछ बातें

कात्यायनी

दिल्ली विधानसभा चुनावों में दो बुर्जुआ लोकरंजकतावादी (पापुलिस्ट) राजनीतियाँ एक दूसरे के सामने खड़ी थीं। मोदी के फासिस्ट लोक-रंजकतावाद का मुकाबला केजरीवाल के निम्न-बुर्जुआ लोकरंजकतावाद के नये उभार से था।

मध्य वर्ग, व्यापारियों और छोटे उद्यमियों-कारोबारियों में दोनों का समान सामाजिक आधार था। बहुसंख्यक ग़रीब आबादी ने सस्ती बिजली-पानी, भ्रष्टाचार-उन्मूलन, रोज़गार, मँहगाई कम करने जैसे केजरीवाल के वायदों पर अधिक भरोसा किया, क्योंकि गत आठ महीनों के दौरान वह मोदी की केन्द्र सरकार के वायदों की हवा निकलते लगातार देख रही थी। बढ़ती महँगाई और मज़दूर-विरोधी नीतियाँ भी मोदी के भड़कीले प्रचार और शो-बिज़नेस को लगातार फीका बना रही थीं। एक कारण यह भी था कि संघ परिवार ठीक से यह तय नहीं कर पाया था कि वह किस हद तक "विकास" के हवामहल के सपनों की सौदागरी पर भरोसा करे और किस हद तक साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण के कपट-प्रबन्ध का सहारा ले। दिल्ली की महानगरीय आबादी के विशिष्ट संघटन को देखते हुए उन्मादी साम्प्रदायिक भाषणों और वोटों के साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण के लिए नियंत्रित और रेग्युलेटेड ढंग से तनाव व दंगों का माहौल पैदा करने की रणनीति काम नहीं आयी। संघ परिवार और भाजपा अपने कुछ अन्दरूनी अन्तरविरोधों को भी ठीक से सँभाल नहीं पाये। बड़े पैमाने पर पैराट्रुपर उम्मीदवारों, बाहर से आये प्रचारकों की भारी मौजूदगी, दिल्ली के पुराने भाजपा नेताओं की उपेक्षा और मोदी-शाह जोड़ी की धक्कड़शाही के आम प्रभाव के कारण ग्रासरूट स्तर पर भाजपा की चुनावी मुहिम एक हद तक प्रभावित हुई। दरअसल मोदी काल में भाजपा के अन्दरूनी संघटन में बदलाव और पीढ़ी-परिवर्तन के कारण मची उथल-पुथल अभी स्थिर नहीं हुई थी। संघ परिवार के कैडर-आधारित ढाँचे के कारण ज़मीनी स्तर पर उसके प्रचार की जो प्रभाव-कुशलता हुआ करती थी, उसका प्रभावी मुकाबला आम आदमी पार्टी ने एन.जी.ओ. कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त आई.टी. सेक्टर और प्रबन्धन सेक्टर के ऐसे युवाओं और ऐसे छात्रों की कार्यकर्ता शक्ति को घर-घर प्रचार के काम में झोंककर किया, जो निहायत अराजनीतिक कुलीन पृष्ठभूमि के लोग हैं और इस विभ्रम के शिकार हैं कि राजनीति और दफ़्तरशाही के भ्रष्टाचार को यदि दूर कर दिया जाये तो मुक्त बाज़ार की नीतियाँ लागू करते हुए देश प्रगति पथ पर कुलाँचें भरने लगेगा।

मार्क्सवादी सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण के आधार पर हमारा पहले से ही यह मानना रहा है कि आम आदमी पार्टी का निम्नबुर्जुआ लोकरंजकतावाद एक अस्थायी परिघटना है। यह राजनीतिक प्रवृत्ति कालान्तर में या तो बिखर जायेगी या फिर एक धुर दक्षिणपंथी अन्तर्वस्तु और सामाजिक जनवादी स्वरूप वाले बुर्जुआ संसदीय दल के रूप में इसी व्यवस्था में व्यवस्थित हो जायेगी।

दिल्ली के बाद आम आदमी पार्टी अपना देशव्यापी विस्तार करना चाहती है और पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र पर पहले विशेष ज़ोर लगाना चाहती है। उसकी पश्चिम बंगाल इकाई ने भी आगामी विधानसभा चुनावों में सभी सीटों पर उम्मीदवार उतारने की घोषणा कर दी है। अहम राष्ट्रीय मसलों और आर्थिक नीति के प्रश्नों पर आप पार्टी अब तक अपना स्टैण्ड रखने से बचती रही है और गोलमाल करती रही है, लेकिन आगे यह मुमकिन नहीं होगा। केजरीवाल कहते हैं कि उनकी कोई विचारधारा नहीं है और आम आदमी का हित ही उनकी विचारधारा है। वैसे विचारधारा के न होने की इस घोषणा की भी अपनी सुनिश्चित विचारधारा है। हर राजनीति की अपनी एक विचारधारा होती ही है। केजरीवाल की लोकरंजक राजनीति को नवउदारवादी आर्थिक नीतियों से कोई परहेज़ नहीं है। सारी दुर्वस्था और जनता की परेशानियों की जड़ वे भ्रष्टाचार को मानते हैं। लेकिन, विशेषकर पूँजीवादी संकट, पतन और पराभव के इस दौर में, कोई पूँजीवादी व्यवस्था भ्रष्टाचारमुक्त हो ही नहीं सकती (वैसे तो किसी दौर में नहीं हो सकती)। विधिसम्मत पूँजीवादी लूट (अधिशेष विनियोजन और प्राकृतिक संसाधनों की लूट) अपने साथ-साथ अवैध लूट को जन्म देती ही है। पूँजीपति वर्ग के सेवक और प्रबन्धक नैतिक और सदाचारी आचरण भला क्यों करेंगे। राजनीतिक अर्थशास्त्र की दृष्टि से देखें तो भ्रष्टाचार भी आदिम पूँजी संचय का ही एक रास्ता है। कालाधन एक हज़ार एक रास्तों से सफ़ेद होकर वास्तविक अर्थव्यवस्था में लगता रहता है और वैध लूट का विराट तंत्र अपने सभी संस्तरों पर लगातार काले धन को जन्म देता रहता है। भ्रष्टाचार-उन्मूलन का लोकरंजक नारा देने वाली राजनीतिक-सामाजिक प्रवृत्तियों को यह व्यवस्था स्वयं समय-समय पर जन्म देती रहती है ताकि अराजक अतिरेक तक पहुँची स्थिति को कुछ नियंत्रण में लाया जा सके।

पूँजीवादी जनवाद जब भी अपनी साख खोने लगता है और अपनी करनी से खुद ही नंगा होने लगता है तो आदर्शों का मुखौटा लगाये कुछ "जननायक" मंच पर अवतरित होते हैं। सत्तर के दशक में सम्पूर्ण क्रान्ति के नारे और जनता पार्टी प्रयोग के साथ जयप्रकाश नारायण "लोकनायक" बनकर आये, तो नब्बे के दशक में विश्वनाथ प्रताप सिंह "श्रीमान सुथराजी" (मि. क्लीन) का जोड़ा-जामा पहनकर सामाजिक न्याय के नारे के साथ आये। अण्णा आन्दोलन और केजरीवाल परिघटना का मूल लक्ष्य भी पूँजीवादी जनवाद की गिरती साख और उससे मोहभंग से पैदा होने वाली विस्फोटक सम्भावनाओं को नियंत्रित करना है। पुरानी संसदीय वामपंथी पार्टियाँ आज व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा पंक्ति के रूप में निष्प्रभावी हो चुकी हैं। समाजवाद के नाम पर "नेहरूवादी समाजवाद" और कीन्सियाई नुस्खों से अधिक वे कुछ कह नहीं सकतीं। व्यवहार में कीन्सियाई नुस्खों और बुर्जुआ "कल्याणकारी राज्य" की वापसी आज असम्भव है। केरल और बंगाल में

कुछ अधिक "मानवीय चेहरे वाले" नवउदारवाद के अतिरिक्त, या चीनी "बाज़ार समाजवाद" जैसे नवउदारवादी मॉडल के अतिरिक्त चुनावी वामपंथियों के पास और कोई विकल्प नहीं है। मज़दूर वर्ग के जुझारू राजनीतिक संघर्ष तो दूर, ये सभी दल रस्मी और रोज़मर्रा के आर्थिक संघर्षों से भी किनारा कर चुके हैं। ऐसे में, एन.जी.ओ.-सुधारवाद के सामाजिक आन्दोलनों के भीतर से पूँजीवादी व्यवस्था की एक नयी सुरक्षा पंक्ति 'आप पार्टी परिघटना' के रूप में लोकरंजक नारों और लुभावने वायदों के साथ सामने आयी है।

सरकार चलाते हुए ये संसदीय वामपंथी नवउदारवादी नीतियों को ही लागू करते रहे। देवगौड़ा और गुजराल की अल्पावधि केन्द्र सरकारों के दौरान और यू.पी.ए.-एक के दौरान यह स्पष्ट हो गया कि कुछ अधिक "मानवीय चेहरे वाले" नवउदारवाद के अतिरिक्त, या चीनी "बाज़ार समाजवाद" जैसे नवउदारवादी मॉडल के अतिरिक्त चुनावी वामपंथियों के पास और कोई विकल्प नहीं है। मज़दूर वर्ग के जुझारू राजनीतिक संघर्ष तो दूर, ये सभी दल रस्मी और रोज़मर्रा के आर्थिक संघर्षों से भी किनारा कर चुके हैं। ऐसे में, एन.जी.ओ.-सुधारवाद के सामाजिक आन्दोलनों के भीतर से पूँजीवादी व्यवस्था की एक नयी सुरक्षा पंक्ति 'आप पार्टी परिघटना' के रूप में लोकरंजक नारों और लुभावने वायदों के साथ सामने आयी है।

लेकिन सच्चाई यह है कि यह नयी दूसरी सुरक्षा पंक्ति पूँजीवादी ढाँचागत संकट के इस दौर में बहुत कम समय तक ही विभ्रमों को बनाये रख सकेगी। महँगाई, बेरोज़गारी, बिजली-पानी, भ्रष्टाचार उन्मूलन, आवास, शिक्षा विषयक आप पार्टी के वायदों-आश्वासनों की कलई उतरते देर नहीं लगेगी। ग़ौरतलब यह है कि मोदी के श्रम सुधारों पर केजरीवाल एण्ड कं. कभी कुछ नहीं बोलती। पिछली बार केजरीवाल ने दिल्ली से ठेका मज़दूरी ख़त्म करने की बात की थी और इस वायदे को लेकर ठेका मज़दूरों ने जब सचिवालय घेरा तो उनका श्रम मंत्री इस वायदे से ही मुकर गया और फिर भाग खड़ा हुआ। इस बार केजरीवाल ने सावधानी के साथ सिर्फ सरकारी विभागों से ठेका प्रथा ख़त्म करने की बात की है (हालाँकि यह करना भी उनके लिए मुश्किल है)। दिल्ली में श्रम क़ानूनों को लागू करवाने के बारे में आप पार्टी पूरी तरह मौन है।

अपने देशव्यापी फैलाव के साथ आप पार्टी को भूमि अधिग्रहण क़ानून, राज्यों के श्रम सुधारों, विस्थापन, छत्तीसगढ़ में आतंकवाद के बहाने आम जनता के दमन, जम्मू-कश्मीर और पूर्वोत्तर में 'आफ्स्पा' और वहाँ की जनता के आत्मनिर्णय के अधिकार जैसे मसलों पर अपना स्टैण्ड स्पष्ट करना ही पड़ेगा। एक राष्ट्रीय पार्टी के रूप में केन्द्र की राजनीति में दखल के साथ ही विनिवेश के नाम पर जनता के ख़ून-पसीने से खड़े किये गये सार्वजनिक उपक्रमों और प्राकृतिक संसाधनों को कौड़ियों के मोल देशी-विदेशी पूँजीपतियों को सौंपने के सवाल पर, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के सवाल पर, शिक्षा और स्वास्थ्य के निजीकरण के सवाल पर और ऐसी तमाम नवउदारवादी नीतियों पर अपनी अवस्थिति स्पष्ट करनी ही होगी। इस समय तक दिल्ली में उनकी सरकार की कारगुज़ारियाँ भी सामने रहेंगी और उनके लोकरंजकतावाद की कलई उतरने की शुरुआत हो चुकी रहेगी।

पूँजीवादी व्यवस्था की गहराती दुश्चक्रीय निराशा और इस नयी सुरक्षा पंक्ति का ढहना निश्चय ही क्रान्तिकारी संकट के एक नये गहन-गम्भीर दौर को जन्म देगा। जैसा कि लेनिन ने कहा था, **क्रान्तिकारी संकट क्रान्तियों को तभी जन्म देते हैं जब क्रान्ति की नेतृत्वकारी मनोगत शक्तियाँ तैयार हों।** ज़ाहिर है, भारत में अभी यह स्थिति नहीं है। अगले पाँच-दस वर्षों में भी इसकी अपेक्षा आकाश कुसुम की अभिलाषा होगी। हाँ, एक बात ज़रूर है। विकासमान क्रान्तिकारी शक्तियाँ यदि 'लकीर की फकीरी' और कठमुल्लावाद से मुक्त होकर क्रान्तिकारी संकट के हालात का सही ढंग से लाभ उठायें, यदि वे सटीक आकलन के आधार पर, सीमित ही सही, लेकिन साहसिक हस्तक्षेप करें, तो अपनी ताक़त और सामाजिक आधार का काफ़ी तेज़ी से विस्तार कर सकती हैं, और ज़मीनी तौर पर, व्यावहारिक स्तर पर, जनता के एक बड़े हिस्से के सामने क्रान्तिकारी विकल्प का खाका पेश करने में तथा स्वयं को उसके वाहक के रूप में पेश करने में कामयाब हो सकती हैं। फिर आवर्ती चक्रीय क्रम में आने वाले क्रान्तिकारी संकट के विस्फोट के अगले दौर में वे देश स्तर पर निर्णायक ढंग से क्रान्तिकारी पहल लेने की स्थिति में आ सकती हैं। यह बात भूलनी नहीं चाहिए कि इतिहास कभी चन्द वर्षों के कार्यभार पूरे करने में दशाब्दियाँ या एक शताब्दी तक लगा देता है और फिर ऐसे वेगवाही दौर भी आते हैं जब इतिहास दशाब्दियों या शताब्दियों के कार्यभार चन्द वर्षों में पूरे कर लेता है।

दिल्ली में आज अत्यधिक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक अवसर आ चुका है। दिल्ली में तकरीबन 60 फीसदी आबादी मेहनतकशों की है, जिनमें अधिकांश असंगठित मज़दूर हैं। निम्न मध्यवर्गीय परेशानहाल आम लोगों को मिलाकर कुल आबादी का तकरीबन 80 फीसदी हिस्सा बनता है। केजरीवाल द्वारा किये गये वायदों (विशेषकर आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य और ठेका प्रथा समाप्ति सम्बन्धी वायदे) को निभाने के लिए और मज़दूर वर्ग की अन्य माँगों (विशेषकर श्रम क़ानूनों और श्रम विभाग को लेकर) को लेकर दबाव बनाने के लिए मज़दूरों को तृणमूल स्तर पर अभी से संगठित करना शुरू कर देना होगा। ऐसे में जल्दी ही व्यापक मेहनतकश आबादी को पूँजीवादी जनवादी व्यवस्था के सीमान्त और बुर्जुआ सुधारवाद एवं लोकरंजकतावाद की वास्तविकता दीखने लगेगी। वर्ग चेतना के क्रान्तिकारीकरण की यह बुनियादी शर्त है।

आज मार्क्सवाद का ककहरा तक भूल चुके ऐसे पस्तहिम्मत, अकर्मण्य, सुविधाभोगी कथित वामपंथी बुद्धिबहादुरों की कमी नहीं जो विश्वव्यापी विपर्यय और भारतीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की विफलताओं एवं विपथगमन के ऐतिहासिक कारणों का वस्तुपरक विश्लेषण करने के बजाय, खुद को किनारे करके सिर्फ कोसते-सरापते-विलापते रहते हैं। इनमें से अधिकांश एन.जी.ओ. सुधारवाद, पहचान की राजनीति, अम्बेडकरवाद आदि-आदि के साथ मार्क्सवाद की खिचड़ी, बिरयानी, पुलाव आदि पकाने की किसिम- किसिम की रेसिपी सुझाते रहते हैं। ऐसे ही लोगों में से कई हैं जो इनदिनों केजरीवाल पर लट्टू हैं। दरअसल ऐसे अपढ़ "मार्क्सवादी" विज्ञान के अभाव में कभी भी स्थितियों का आर्थिक-सामाजिक विश्लेषण नहीं करते, सतही पर्यवेक्षणों के नतीजों से कभी इतने निराश हो जाते हैं कि घर के किसी कोने में मरे चूहे की सूखी हुई लाश सरीखे दीखने लगते हैं और कभी लोकरंजकतावाद की किसी लहर पर डूबते-उतराते आशावाद से इतने लबरेज़ हो जाते हैं कि पूरा माहौल फेन और बुलबुलों से भर देते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जिनकी सोच कुछ ऐसी है कि 'जब क्रान्ति की फिलहाल दूर-दूर तक सम्भावना नहीं, तो अभी के लिए केजरीवाल ही सही, कुछ तो कर रहा है।' सच यह है कि केजरीवाल कुछ नहीं कर सकता। कोई भी मार्क्सवादी यदि वस्तुगत स्थितियों और नीतियों के विश्लेषण से शुरू करे तो उसे यह समझते देर नहीं लगेगी। मगर सुविधाभोगी, निठल्ले निराशों से हम यह अपेक्षा करें ही क्यों?

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006